VISHVA–JYOTI R. N. NO. 1/ 57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2018 TO 31.12.2020)

६७, ११ फरवरी २०१९

विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

संस्थापक–सम्पादक :
स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

सम्पादक:
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
(सञ्चालक)

सह–सम्पादक :
डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर
होश्यारपुर

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द
चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल
होश्यारपुर

डॉ. (सुश्री) रेणू कपिला
पटियाला

शुल्क की दरें

आजीवन (भारत में)	:	१२०० रु.	आजीवन (विदेश में)	:	३०० डालर
वार्षिक (भारत में)	:	१०० रु.	वार्षिक (विदेश में)	:	३० डालर
सामान्य अङ्क (भारत में)	:	१० रु.	सामान्य अङ्क (विदेश में)	:	३ डालर
विशेषाङ्क (एक भाग भारत में)	:	२५ रु.	विशेषाङ्क (एक भाग विदेश में)	:	६ डालर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होश्यारपुर–146 021 (पंजाब, भारत)

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606
सञ्चालक (निवास) : 01882-224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
डॉ. सत्यपाल सिंह	अमर धरोहर	कविता	२
डॉ. दिनेश प्रसाद तिवारी	वेदों में सांस्कृतिक तत्त्व	लेख	३
श्रीमती कृष्णा माहेश्वरी	दूतकर्मी श्री हनुमान् जी	लेख	९
डॉ. परमिन्द्र कौर	मानवीय समता के विधायक: संत रैदास	लेख	१२
आचार्य भगवान देव 'चैतन्य'	लोकमान्य बालगंगाधर तिलक	लेख	१४
श्री कृष्णचन्द्र टवाणी	पर्व संदेश	लेख	१८
डॉ. सत्यव्रत वर्मा	पोलैण्ड का एक अनूठा संस्कृतज्ञ परिवार	लेख	२३
श्री शशांक मिश्र भारती	पलटवार (कहानी)	लेख	२६
श्री सीताराम गुप्ता	शब्द ही ब्रह्म अथवा सर्जक है क्योंकि शब्दों से ही इस त्रिगुणात्मक संसार का सृजन संभव है	लेख	२८
डॉ. उमा रानी	वैदिक देवता सोम	लेख	३०
डॉ. ऋषभ भारद्वाज	कल्पवृक्ष (प्राचीनता और वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता)	लेख	३४
	संस्थान-समाचार		४२
	विविध-समाचार		४३
	पुण्य-पृष्ठ		४४-५१

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६७ होश्यारपुर, माघ २०७५; फरवरी २०१९ संख्या ११

अग्ने त्वं सु जागृहि
वयं सु मन्दिषीमहि।
रक्षा णो अप्रयुच्छन्
प्रबुधे नः पुनस्कृधि।।
(यजु. ४.१४)

हे अग्निदेव! (त्वं) तू (सु) अच्छे प्रकार से (जागृहि) जाग (ताकि) (वयं) हम अच्छे प्रकार (मन्दिषीमहि) आनन्दित हो सकें। तू सदा (अप्रयुच्छन्) ध्यानपूर्वक (णः) हमारी (रक्ष) रक्षा कर। (हम सो रहे थे, अब) (प्रबुधे नः पुनस्कृधि) फिर हमें जागृत कर।।

(वेदसार-विश्वबन्धुः)

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत्।
योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते।।

(कठोपनिषद्, १.२९)

नचिकेता कहता है कि हे यमराज! जिस आत्मतत्त्व के ज्ञानसंबंधी आशंका लोगों द्वारा प्रकट की जाती है कि मरने के बाद आत्मा का अस्तित्व है या नहीं? उस आत्मा के विषय में जो आपका अनुभूत निर्णयात्मक ज्ञान है, उसका आप मुझे उपदेश दीजिए। क्योंकि यह आत्मतत्त्व संबंधी व उत्यन्त गूढ़ है। परन्तु हे यमराज! मैं नचिकेता आपका शिष्य इस वर के अतिरिक्त अन्य कोई वर नहीं मांगना चाहता।

अमर धरोहर

–डॉ. सत्यपाल सिंह

वेदों में गाथा देवों की हम ऐसा सुनतें आते हैं।
इन वचनों को सत्य मानकर, हम भी वह दोहरते हैं।।
वेद धरोहर हिन्दू की, ये भी हमें सुनाते हैं।
सच कहता हूँ, यह सच नहीं है, लोग हमें भरमाते हैं।।
वेद ज्ञान है उसका ही है, जो इसको अपनाते हैं।
चिन्तक और विचारशील जन, इससे लाभ उठाते हैं।।
सकल चराचर जड़-चेतन की, सृष्टि का सब ज्ञान यहाँ है।
कण-कण में जो व्याप रहा है, उसका भी व्याख्यान यहाँ है।।
देख ईश की अद्भुत रचना, अमर काव्य यह कहलाता है।
सृष्टि इसका दृश्य काव्य है, हर युग में यह दोहराता है।।
सकल विश्व में सबसे पहले, जो मानव के कदम बढ़े थे।।
जीवन को कैसे जीना है, जो भी इसके पाठ पढ़े थे।
ज्ञान-कर्म संग भौतिक वैभव, कैसे पावें कैसे भोगें।।
वेद निधि में भरा पड़ा है, एक झलक कोई इसकी देखें।
वैदिक शिक्षा 'कर्म करो बस, फल कर्मों का हम पाते हैं।।
घर में सुख और समृद्धि के, सूत्र हमें यहाँ मिल जाते हैं।
घर में किसको कैसे रहना, वेद हमें ये बतलाते हैं।।
शुभसंकल्पसमन्वित मन से, व्रतधारी हों पिता जहां पर।
अनुगामी आज्ञाकारी भी, धर्मनिष्ठ हों पुत्र जहां पर।।

एसोसिएट प्रोफेसर, जाकिर हुसैन महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

वेदों में सांस्कृतिक तत्त्व

–डॉ. दिनेश प्रसाद तिवारी

संस्कृति किसी राष्ट्र की अन्तश्चेतना होती है, और सभ्यता उसका बाह्य कलेवर। व्यक्ति के (मानसिक) विचारों से उसका (क्रियात्मक) आचार निर्धारित होता है। भूयशः पुनरावृत्त आचारों से प्रवृत्ति का जन्म होता है, तथा घनीभूत प्रवृत्तियों से चरित्र बनता है। चरित्र निर्माण की यही व्यष्टिगत प्रक्रिया जब समष्टिगत रूप धारण करती है तब वह संस्कृति कही जाती है। इस दृष्टि से संस्कृति जहां एक ओर (विचारों की अविछिन्न परम्परा होने के कारण) जीवन्त होती है वहीं दूसरी ओर (चरम परिष्कारभूत चरित्र आधृत होने से) चिरस्थायिनी भी है। भारतीय जनमानस की आधारभूमि के रूप में जो एक अजस्र प्राणदायिनी अमृतमयी धारा अनादिकाल से अद्यतन भारतीय जीवन में प्रवाहित होती आ रही है वही भारतीय संस्कृति है। आचार्य चरक के शब्दों में–

संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते[1]।

अर्थात् पहले से विद्यमान दुर्गुणों को हटाकर उसके स्थान पर सद्गुणों का आधान करना ही संस्कार है। इसी प्रकार तन्त्रवार्तिककार ने योग्यता–आधान को संस्कार माना है–

योग्यताञ्चादधानाः क्रियाः संस्काराः इत्युच्यन्ते[2]।

मनुष्यसृष्टि का सर्वोत्कृष्ट प्राणी है, फिर नवनिर्माण का प्रयोजन क्या है? उत्तर यह है कि हम आज भौतिक साधनों के द्वारा देश समाज को उन्नति एवं समृद्धि के शिखर पर पहुंचाने की विभिन्न योजनायें बनाते हैं, उन्हें तत्परतापूर्वक क्रियान्वित भी करते हैं परन्तु उनका अभीष्ट लाभ नहीं उठा पाते हैं बल्कि वे सुख–शान्ति देने के स्थान पर पारस्परिक ईर्ष्या–द्वेष तथा अशान्ति का हेतु बन जाते हैं। कारण यह है कि आज जिस समाज के व्यक्तियों को ऊपर उठाने की योजनायें बनती हैं, उसके अथवा तत्केन्द्रभूत मानव के वैयक्तिक, शारीरिक एवं मानसिक विकास की ओर कोई समुचित ध्यान नहीं दिया जाता। स्वामी रामतीर्थ के शब्दों में "समाज की उन्नति बड़े (वैभवशाली) लोगों के छोटे विचारों से नहीं अपितु छोटे (भौतिक साधनों से रहित होने से समाज में हेयदृष्टि से देखे जाने वाले) लोगों के बड़े विचारों से होती है।" रावण की स्वर्णमयी लंका में किसी भौतिक साधन की कमी नहीं थी किन्तु वहां के व्यक्तियों का वैचारिक स्तर निकृष्ट था, जिससे वहां का समूचा वैभव नष्ट–भ्रष्ट हो गया। वैदिक ऋषियों ने उपर्युक्त तथ्य को समझा, समाज को ऐश्वर्य से नहीं प्रत्युत शारीरिक एवं मानसिक रूप से उत्कृष्टतर व्यक्ति सौंपकर उसे

१ चरकसंहिता

२ तन्त्रवार्तिक, पृष्ठ १०७८

बदलने का स्वप्न देखा और संस्कार-पद्धति को जन्म दिया। इस प्रकार संस्कारयोजना व्यक्ति-परक होती हुई भी प्रमुखतया एक स्थायी एवं सुदृढ़ समाज की आधारशिला है।

किसी शुभ मुहूर्त में देवताओं के स्तुतिपरक वेद-मन्त्रों के साथ वैदिक संस्कार सम्पादित किये जाते रहे हैं। उनकी सम्पादनविद्या तथा विनियुक्त मन्त्रों के भावों को देखते हुए प्रो. राजबली पाण्डे का कहना है कि "संस्कार मनुष्य के हर्ष-विषाद आदि मनोभावों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति हैं। विघ्न-बाधाओं और अशुभ शक्तियों से जीवन-रक्षा, लौकिक समृद्धि, सामाजिक-प्रतिष्ठा तथा आध्यात्मिक विकास जैसे अभीष्ट की प्राप्ति संस्कारों का प्रयोजन है।"

मनुष्य जीवन को सुन्दर तथा उच्च बनाने के लिए पूर्वज ऋषियों ने जो विधान बनाये थे, उन्हीं को संस्कार कहा जाता है। 'शबर स्वामी' का कहना है कि "संस्कार वह वस्तु है, जिसके होने से कोई वस्तु या व्यक्ति किसी के योग्य बनता है।"

संस्कारो नाम सम्भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्य: कस्यचिदर्थस्य।

इस प्रकार ये संस्कार प्राचीन काल से ही हमारे पारिवारिक सामाजिक जीवन की भी आधारशिला है। "संस्कृति मस्तिष्क का जीवन है[3]।" "जीवन की विभिन्न और सम्बद्ध समस्याओं पर हुआ चिन्तन और उसकी अभिव्यक्ति ही संस्कृति है[4]।" वैदिक कालीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता भारत के एक विस्तृत भूभाग पर फैली हुई थी। आर्यो ने अनेकता में एकता, ऐहिकता और पारलौकिकता के सुन्दर समन्वय और मानव के समग्र जीवन के सानुपातिक विकास की व्यवस्था द्वारा विश्व की सर्वाधिक पुरातन और सर्वोच्च संस्कृति का निर्माण किया था। वेदों में उपलब्ध सांस्कृतिक तत्वों का अनुशीलन इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है

ग्राम तथा गृह- वैदिककालीन समाज में आर्यों का निवास स्थान प्राय: ग्रामीण क्षेत्र था। वैदिक मन्त्रों में घर के अर्थ को सूचित करने वाले गृह, आयतन, पस्त्या, वास्तु, हर्म्य, दुरोण आदि अनेक शब्द उपलब्ध होते हैं जो गृह की विशिष्टता को लक्ष्य कर प्रयुक्त किये गये हैं। घरों को बनाने में बांस, मिट्टी, लकड़ी, पत्थर और पके हुये ईंट प्रधान समान थे। वैदिक गृहों में आवश्यकतानुसार कमरे हुआ करते थे, जैसे-अग्निशाला, हविर्धान, पत्नीनांसदन, सदस् इन चार प्रकार के कमरों का उल्लेख मिलता है। कई गृहों को मिलाकर एक ग्राम बनता था। उस समय के ग्राम स्वावलम्बी थे। वहां के निवासी आवश्यक खाद्य, पेय और वस्त्रादि उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन भी करते थे, जिनको रखने

3 The Centre of Indian Culture, Ravindra Nath Tagore, Page-15

4 Freedom Culture, Dr. Radhakrishnan, Page-24

के लिए हविर्धान भण्डार का निर्माण कराते थे। उत्सव तथा यज्ञों में आने वाले अतिथियों और निमंत्रित व्यक्तियों तथा ब्राह्मणों के रहने के लिए पृथक् कमरा होता था जिसे 'आवसथ' या 'अतिथिशाला' कहते थे। वैदिककालीन समाज अपने गृहों की रक्षा के लिए 'वास्तोष्पति' देवता की स्तुति करते थे, जिससे आर्यों का गृह शोभन तथा रोगहीन होता था। गृहों को पर्याप्त अलंकृत किया जाता था।

वेशभूषा- वैदिक काल में आर्य वासस् वस्त्र, अधोवस्त्र तथा उत्तरीय वस्त्रों को धारण करते थे। ऊनी तथा सूती दोनों ही प्रकार के वस्त्रों का प्रचलन था। परुष्णी और गान्धार की भेड़े प्रसिद्ध थीं-

परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यवः।[५]

सिन्धु को ऊर्णावती भी कहा है क्योंकि यह प्रदेश ऊनी वस्त्रों का घर था। मुनिजन तथा तपस्वी लोग मृगचर्म तथा वल्कल वस्त्र धारण करते थे। अथर्ववेद में मृत व्यक्ति के लिए तार्प्य वस्त्रों का उल्लेख मिलता हैं, जिसे विद्वान् रेशमी वस्त्र कहते हैं। वस्त्रों में पेशस् तथा उष्णीष आदि उल्लेख्य हैं।

स्त्री और पुरुष दोनों आभूषणों को धारण करते थे। स्वर्ण के निष्क गले में रुक्म वक्षःस्थल में, कान में कर्णशोभन तथा शीष पर 'कुम्ब' आदि आभूषण धारण करते थे। इसके अतिरिक्त भुजबन्ध, केयूर,नूपुर, मुद्रिका और कंकण आदि आभूषण ही धारण किये जाते थे। स्त्रियां चार प्रकार से वेणियां सजाती थीं-

''चतुष्कपर्दा युवतीः सुपेशा।''

ओपश, कुम्ब, कुरीर आदि पारिषाषिक शब्द हैं जो तत्कालीन सज्जा के विशिष्ट नाम हैं।

आमोद-प्रमोद- वैदिक काल में लोग जीवन को आनन्दमय बनाने के लिए 'उत्सव' एवं 'समन' का आयोजन किया करते थे। पंचम मण्डल में रथदौड़ तथा घुड़दौड़ का वर्णन मिलता है। दौड़ शब्द के लिए 'आजि' शब्द का प्रयोग हुआ है। दौड़ के मैदान को काष्ठा कहते हैं। जुआ खेलने का वर्णन द्वितीय मण्डल में है। पुरुष तथा स्त्री दोनों 'आघाटि' बजाकर नृत्य तथा गान में भाग लेते थे। तीन प्रकार के वाद्यों का आविष्कार हो चुका था दुन्दुभि, कर्करि, वीणा (वाण) और नाड़ी आदि वाद्यों की तथा सप्तस्वरों की पहिचान हो चुकी थी। दुंदुभि (ढोल) विजयोत्सव वैदिककाल में था। द्यूतक्रीडा तथा आखेट का प्रचलन भी वैदिककाल में था। आर्य लोग अरण्य में जाकर अनेक पशु-पक्षियों का आखेट करते थे।

परिवार- तत्कालीन समाज में हमें सुव्यवस्थित, सांस्कृतिक जीवन के दर्शन होते हैं। उस समाज में पृथक्-पृथक् परिवार होते थे। परिवार में पिता का स्थान सर्वोच्च था। परिवार के सभी सदस्य उसके आश्रित होते थे। माता का भी महत्वपूर्ण

---

५ ऋग्वेद-५/५२/९

स्थान था, वह पारिवारिक कार्यों में तरह-तरह से सहयोग करती थी। माता-पिता का अपनी सन्तान पर पूर्ण अधिकार था। पिता के अभाव में ज्येष्ठ पुत्र परिवार का उत्तरदायित्व सँभालता था। पुत्र हि पिता की सम्पत्ति का अधिकारी होता था। पुत्र के अभाव में पुत्री उत्तराधिकारिणी बनती थी। पुत्र-प्राप्ति गार्हस्थ्य जीवन का मूलमन्त्र माना जाता था। पुत्र को विद्याभ्यास के लिए गुरुकुल भेजा जाता था। दत्तकपुत्र प्रथा प्रचलित थी। उस समय का परिवार अत्यन्त शिष्ट, सभ्य एवं सुसंस्कृत था। परिवार में बड़े-बूढ़ों को पर्याप्त सम्मान मिलता था। "संस्कृति समस्त परम्परागत अर्जित व्यवहारों और उनके परिणामों की समष्टि है[६]।"

संस्कार- संस्कार शब्द प्राचीन वैदिक साहित्य में प्राप्त नहीं है। संस्कार वह है, जिसके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी विशेष कार्य के योग्य हो जाता है या संस्कार, वे क्रियायें तथा रीतियां हैं, जो योग्यता प्रदान करती हैं। संस्कार की एक और परिभाषा है, एक विलक्षण योग्यता है, जो शास्त्रविहीन क्रियाओं के करने से उत्पन्न होती है। व्यक्ति की वृत्तियों का परिष्कार कर उसे उद्देश्यपूर्ण संस्कृत दिशा प्रदान करना है।

स्मृतिशास्त्रों में चालीस संस्कारों तक का वर्णन है। मनु तथा याज्ञवल्क्य ने संस्कारों की संख्या नहीं बतायी है। किन्तु निषेक (गर्भाधान) से अन्त्येष्टि तक संस्कारों का उल्लेख है।[७] 'गौतम-स्मृति' में चालीस संस्कारों का वर्णन है। शंख और बुध ने भी चालीस संस्कारों का वर्णन किया है। 'आंगिरस स्मृति' में बाइस संस्कारों का अंकन है। 'व्यास स्मृति' मे सोलह संस्कार बताये गये हैं।

मनु ने निषेक, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थाश्रम संस्कार, संन्यासाश्रम संस्कार तथा अन्त्येष्टि, इन संस्कारों का उल्लेख किया है[८]। द्विजों में गर्भाधान से लेकर उपनयन तक के संस्कार अनिवार्य माने गये हैं। समावर्तन तथा विवाह-संस्कार अनिवार्य नहीं हैं क्योंकि कोई भी छात्र-जीवन के बाद संन्यास ग्रहण कर सकता है। शूद्रवर्ण वैदिक मंत्रों से विरत रहकर संस्कारित हो सकता है।

वस्तुतः आश्रमों में ही सारे संस्कार अन्तर्निहित हैं। तद्यथा माता-पिता (अर्थात् गृहस्थ) द्वारा सम्पाद्य संस्कार तथा विवाह 'गृहस्थाश्रम' के अन्तर्गत माने जा सकते हैं, उपनयन से समावर्तन तक के संस्कार वेदाध्ययन काल में होने से 'ब्रह्मचर्य आश्रम' में अन्तर्भूत है। 'अन्त्येष्टि' संस्कार मृत्यूपरान्त विहित होने से संन्यास आश्रम का अन्तिम चरण कहा जा सकता

---

६ हिन्दी साहित्य कोश, राल्फलिंटन, पृष्ठ ८०१-२

७ मनुस्मृति २-१६

८ मनुस्मृति-द्वितीय अध्याय

है। वानप्रस्थाश्रम में वह अपने कुटुम्ब से आगे बढ़कर समूचे गांव या नगर को स्वजन मानकर व्यवहार करता है तथा संन्यासाश्रम में सारा विश्व उसका अपना-सा हो जाता है, वह उदारचेता हो जाता है- उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्

वैदिक काल में विवाह का सांस्कृतिक स्वरूप- 'ऋग्वेद' में सुव्यवस्थित विवाहप्रथा के दर्शन होते हैं। विवाह गृहस्थाश्रम की भित्ति तथा पारिवारिक ढांचे की आधारशिला है। आचार्य मनु ने स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों को मर्यादा में रखने वाली कल्याणकारी लौकिक प्रथा मानी है-

एषोदिता लोकयात्रा स्त्री-पुंसयोः शुभा।

इसी कारण संस्कारों में इसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। वेदों के अनुसार इसका उद्देश्य गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो, देवकार्यों को करने का अधिकार प्राप्त करना तथा वंशानुक्रम के लिए सन्तान प्राप्ति थी। वर और कन्या ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए युवावस्था प्राप्त करने पर विवाह के अधिकारी होते थे। विवाह एक अपरिवर्तनीय सम्बन्ध माना गया था। क्षत्रियों की कन्यायें पतियों के चुनने में स्वतन्त्र थीं। शेष कन्याओं का विवाह माता-पिता की आज्ञा से होता था-

पिता यत्र दुहितुः सेक मृञ्जन् संशग्म्येन मनसा दधन्वे[९]।

यद्यपि विधवा-विवाह की प्रथा नहीं थी तथापि दशमण्डल में एक सन्तानहीन विधवा का उसके देवर के साथ विवाह वर्णित है। लड़कियां अविवाहित भी रह सकती थीं। विवाह को धार्मिक कृत्य के रूप में मान्यता प्राप्त थी। विवाह के पश्चात् पत्नी का पति के घर में अत्यधिक सम्मान तथा अधिकार होता था। बाल विवाह का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। प्रत्येक गृहस्थ के लिए यज्ञ का सम्पादन वैदिक विधान था और उस यज्ञ की पूर्ति बिना पत्नी के सहयोग से नहीं हो सकती थी।

वैदिककाल की संस्कृति में नारी- वैदिक युग में नारी का गृहस्थी में बड़ा महत्व था। दुहिता के रूप में पत्नी या माता के रूप में वह सर्वथा सम्मान-भाजक थी। पत्नी के बिना पति यज्ञादि धार्मिक कृत्यों में प्रवृत्त नहीं हो सकता था। वह धार्मिक कृत्यों में अर्धभाग की अधिकारिणी थी। इसलिए यज्ञ और पत्नी दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो चुका था-

अयज्ञियो व एष योऽपत्नीकः[१०]।

अर्थात् पत्नी से रहित व्यक्ति यज्ञ के लिए कथमपि उपयुक्त पात्र नहीं था। घर संभालने का पूरा भार पत्नी पर ही था। इसीलिए ऋग्वेद जाया को गृहरूप मानता है-जायेदस्तम्[११]। कन्याओं को सुयोग्य वधु के रूप में परिणत करने के लिए उदार

---

९ ऋग्वेद, ३/३१/१

११ ऋग्वेद, ३/५३/४

१० तैत्तिरीय ब्राह्मण, २/२/२६

शिक्षा का प्रबन्ध था। उन्हें ललित कलाओं, काव्यकला, संगीत, नृत्य तथा अभिनय की सुन्दर शिक्षा दी जाती थी। इसी उदात्त शिक्षा का प्रभाव था कि वेद के मन्त्रों के दर्शन करने वाली अनेक 'ऋषिका' का दर्शन हमें ऋग्वेद के अनुशीलन से होता है। कक्षीवान् की पत्नी घोषा का नाम इस प्रसंग में महत्वशाली है। लोपामुद्रा, अपाला आदि अनेक ऋग्वेद की मंत्रद्रष्टा ऋषिकाएं हैं। मैत्रेयी, गार्गी आदि स्त्रियां दार्शनिक जगत् की अप्रतिम रत्न हैं। पिता के घर में कन्यायें अत्यधिक स्नेह व सम्मान पाती थीं। उनके लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना अनिवार्य था। वे उच्च शिक्षा ग्रहण करती थीं। आर्यनारियों में नैतिकता पूर्णरूपेण विद्यमान थी। वे शोभन आचरण तथा सदाचार के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध थीं। अत: वैदिककालीन समाज में सामान्यत: धर्म का आदर था। कन्या बाल्यकाल में पिता के आश्रम में रहती थी और विवाह होने पर पति के घर के पातिव्रत धर्म का पूर्ण पालन करती थी। नारी का शिक्षाक्षेत्र में और समाज में सर्वत्र सम्मान होता था।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वेदों में सांस्कृतिक स्थिति की जो रूपरेखा प्रस्तुत की गई है वह सामाजिक जीवन की आधारभित्ति है। इन्हीं सांस्कृतिक मूल्यों की छत्रछाया में हमारा राष्ट्र आज भी विकासपथ पर अग्रसर है और आगे भी वह विश्व का पुरोधा रहेगा।

संस्कृत विभाग, आर्मापुर स्नाकोत्तर महाविद्यालय, कानपुर (उ. प्र.)

नास्ति वेदात् परं शास्त्रं नास्ति मातृ-समो गुरुः।
न धर्मात् परमो लाभः तपो नाम शतात् परम्।।

महा. ६, अनु. १०६, ६५

संसार में वेद से बढ़कर अन्य कोई शास्त्र नहीं है तथा माता के समान अन्य कोई गुरु नहीं है। धर्म के कार्य से बढ़कर अन्य कोई दूसरा कार्य नहीं तथा उपवास के समान अन्य कोई तपस्या नहीं। अत: व्यक्ति को चाहिए कि इस प्रकार लोक में सर्वश्रेष्ठ कल्याणप्रद माता-पिता की सेवा तथा स्मरण सदा ही करते रहना चाहिए।

दूतकर्मी श्री हनुमान् जी

–श्रीमती कृष्णा माहेश्वरी

नीतिशास्त्र के अनुसार दूत का काम अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। वह अत्यन्त दायित्वपूर्ण कार्य है। इसे कोई साधारण व्यक्ति सम्पन्न नहीं कर सकता। दूत शब्द का अर्थ होता है संदेश पहुँचाने वाला। अतः दूत में दैहिक और बौद्धिक दोनों तरह के बल अपेक्षित हैं। श्री हनुमान् जी शंकर के अवतार और पवन के अंश हैं। अतः इनमें दैहिक व बौद्धिक दोनों ही बल प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। अग्निपुराण में राजदूत में कौन–कौन से गुण होने चाहिएं इसका विवेचन है–

प्रगल्भः स्मृतिमान् वाग्मी शस्त्रे शास्त्रे च निष्ठितः।
अभ्यस्तकर्मा नृपतेर्दूतो भवितुर्महति।।

(अग्निपुराण २४१/७)

अर्थात् दूत निर्भीक वक्ता, शुद्ध स्मृति से युक्त चैतन्य तथा उचित समय पर उचित बात कहने वाला, युद्धकला कुशल, अस्त्र–शस्त्रों का ज्ञान तथा अनुभव सम्पन्न व्यक्ति ही राजदूत पद के योग्य है। ये समस्त गुण हमारे हनुमान् जी में पर्याप्त मात्रा में हैं।

रामचरितमानस में सर्वप्रथम सुग्रीव के दूत के रूप में दो योद्धा व्यक्तियों की नीयत की परीक्षा लेने के लिए श्री हनुमान् जी श्रीराम लक्ष्मण के पास आते हैं। उनका दौत्यकर्म इतना सफल रहा कि उन दो पराक्रमियों की उन्होंने न केवल सुग्रीव से मित्रता करवा दी बल्कि श्री राम से प्रतिज्ञा भी करा दी कि मैं तुम्हारे संकट का निवारण करूँगा।

सखा सोच त्यागहु बल मोरे।
सब विधि घटबकाज मैं तोरे।।

इस मित्रता के कारण सुग्रीव को राज, कोष, पुर और नारी मिल गई। सुग्रीव इस राग–रंग में इतना डूब गया कि अपने ऊपर अहसानकर्ता को ही भूल गया। ऐसे में श्री हनुमान् जी अनियुक्त दूत बनगये। और–

निकट जाई चरनन्हि सिरु नावा।
चारिहु विधि तेहि कहि समुझावा।।

उन्होंने सुग्रीव के पास जाकर चरणों में सिर नवाया और साम, दान, दण्ड, भेद चारों प्रकार की नीति कह कर उन्हें समझाया। हनुमान् जी के वचन सुनकर सुग्रीव ने बहुत ही भय माना और कहा विषयों ने मेरे ज्ञान को हर लिया और हनुमान् जी के निर्देश पर आये वानरों के समूह से कहा– श्री रामचन्द्रजी का कार्य है और मेरा अनुरोध है तुम चारों ओर जाओ और सीता जी का पता कर आओ।

इसी प्रसङ्ग को रामायण में बाल्मीकि जी के शब्दों में श्री हनुमान् जी कहते हैं–

राज्यं प्राप्तं यशश्चैव मौली श्रीरभिवर्धिता।
मित्राणां संग्रहः शेषस्तद् भवान् कर्तुमर्हति।।

अर्थात् आपने यश और राज्य प्राप्त कर लिया किन्तु मित्रों को अपनाने का कार्य शेष रह गया है। श्री राम चिरकाल तक मित्रता निभाने वाले हैं– कुलस्य हेतुः स्फीतस्य दीर्घबन्धुश्च

राघव:। और यहीं से वे पदोन्नत होकर श्री राम के नियुक्त दूत बन जाते हैं। भगवान् श्री राम सीताजी के प्रति गोपनीय संदेश इन्हीं को सौपते हैं-

कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी। बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल विरह बेगि तुम आयहु।।

लंका में प्रवेश करने से पूर्व वे सुरसा से बुद्धिमानीपूर्वक-

आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान।

सिंहिका से बलपूर्वक-

ताहि मारि मारुतसुत बीरा।
वारिधि पार गयऊ मति धीरा।।

लंकिनी से राजनैतिक कुशलता के साथ व्यवहार करते हैं-

तात मोर अति पुण्य बहूता।
देखेऊँ नयन राम के दूता।।

लंका में पहुँचकर श्री हनुमान् जी सीता जी को रावण के महल में खोजते हैं, सीता जी कहीं नहीं मिलती अचानक उन्होंने देखा-

लंका निसिचर निकल निवासा।
इहाँ कहाँ सज्जन कर वासा।।

यह देखकर नवीन तुलसी वृक्ष-समूहों के मध्य सज्जन पुरुष का निवास कैसे, इसी तर्क-वितर्क में हनुमान् जी डूबे हुए थे- इसी बीच उन्होंने सुना-

राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा।
हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा।।

हनुमान् जी ने राम शब्द का उच्चारण सुना, हृदय में हर्षित हुए और ब्राह्मण का रूप रख कर हनुमान् जी ने पुकारा, सुनते ही विभीषण उठ कर आये। हनुमान् जी ने रामकथा कह कर सीता जी का पता पूछा। विभीषण जी से सारी युक्तियाँ जान कर अत्यन्त सूक्ष्म शरीर बना कर अशोक- वाटिका पहुँचे और पत्तों मे छिप गये। उसी समय रावण मंदोदरी के साथ सीता जी के पास पहुँच कर अनेक प्रकार से धमकाता है, मारने के लिए दौड़ता है फिर एक मास की अवधि निर्धारित कर वापिस लौट जाता है। श्री हनुमान् जी रावण की बातें सुनते हैं पर दूतोचित शान्ति धारण कर धैर्य नहीं खोते। जब सीता जी त्रिजटा से अग्नि प्रज्वलित करने के लिए कहती हैं कि मैं इसमें अपने प्राण त्याग दूंगी। तब हनुमान् जी सीता को सांत्वना देने के उद्देश्य से श्री राम की मुंदरी उनके सम्मुख डालते हैं और छिपे-छिपे श्री राम के गुणों की चर्चा करते हैं, फिर विश्वास दिलाते हैं-

रामदूत मैं मातु जानकी।
सत्य सपथ करुणानिधान की।।

अशोक वाटिका उजाड़ कर लंका जला कर त्रिजटा का स्वप्न सत्य करते हैं साथ ही साथ उन्हें रावण के क्रोध का शिकार होकर रावण की सैन्य शक्ति, लंका का शस्त्रागार, शस्त्राशस्त्र पता करना और अपने बल का परिचय कराना था। लंका जलाकर अपनी शक्ति का परिचय रावण को कराया और अपने आकार को बढ़ा कर सीता जी को आश्वस्त किया कि श्री राम की सेना इतनी बलवान् है कि वे शीघ्र ही आपको अपने समीप बुलवा लेंगे।

रावण की सभा में हनुमान् जी की प्रगल्भता का परिचय मिलता है। विभीषण की बातचीत में उनकी राजनीति की पारंगता का परिचय मिलता है उनका एक-एक वाक्य

सामनीति और भेदनीति का उदाहरण है। इसी कूटनीति का परिणाम विभीषण का रामदल में मिलना है। यह सब कार्य उनके श्रेष्ठ दौत्य-कार्य के उदाहरण हैं।

लक्ष्मण जी जब मूर्छित हो जाते हैं तब सुषेण वैद्य को लंका से चुपचाप उनके घर सहित ले आते हैं। युद्ध के वातावरण में न तो इस कार्य की किसी को भनक लगे कि लक्ष्मण जी को जीवनदान की दिशा में प्रयास हो रहे हैं और न ही विलम्ब उचित था। श्रेष्ठदूत का कार्य येन-केन प्रकारेण साम, दाम दण्ड भेद से जैसे भी हो कार्य निष्पादन होना चाहिए।

श्री राम लक्ष्मण और सीता जी के साथ त्रिवेणी पर आये, स्नान दान के पश्चात् उन्होंने हनुमान् जी को कहा-

प्रभु हनुंमतहि कहा बुझाई।
धरि बटु रूप अवधपुरजाई।।
भरतहि कुसल हमारि सुनाएहु।
समाचार लै तुम्ह चलि आ एहु।।

श्री हनुमान् जी भरत को देखकर अत्यन्त हर्षित हुए, मन में बहुत प्रकार से सुख मानते हुए वे कानों को अमृत के समान वाणी में बोले-

जासु विरह सोचहु दिन राती।
रटहु निरंतर गुन गन पाँती।।
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता।
आयहु कुसल देव मुनि त्राता।।

इन सुन्दर वचनों को सुनते ही भरत जी के सम्पूर्ण विषाद नष्ट हो गये। श्री राम जी के विरहसागर में भरत जी डूबे हुए थे, श्री हनुमान् जी के वचनों से वे डूबने से बच गये। फिर भरत जी ने उनसे पूछा-

को तुम्ह तात कहाँ से आए।
मोहि परम प्रिय वचन सुनाये।।

श्री हनुमान् जी दूतकर्म का भली प्रकार निर्वाह करते हैं- विप्र भेष धारण किया, श्री राम का आगमन बता कर देवताओं द्वारा उनका यशोगान, लंका पर विजय तत्पश्चात् लक्ष्मण और सीता जी के साथ आने का समाचार बताया।

बाल्मीकि रामायण के अनुसार श्री राम हनुमान् जी को कहते हैं तुम शीघ्र ही अयोध्या जाकर पता लगाओ वहां सब कुशल है और यहां के सभी समाचार बताओ। यहाँ के समाचार सुनकर भरत की मुखमुद्रा जैसी हो, यहाँ आकर बताना। भरत के प्रति मेरा जो कर्त्तव्य हो जानने का प्रयत्न करना। यदि भरत वहाँ राज्य करने की इच्छा रखता हो तो हम कहीं और जाकर तपस्वी जीवन व्यतीत कर लेंगे-

संगत्या भरतः श्रीमान् राज्येनार्थी स्वयं भवेत्।
प्रशास्तु वसुधां सर्वामखिलां रघुनन्दनः।।

आनन्द रामायण के अनुसार १४ वर्ष पूर्ण होने पर श्री राम का कोई संदेश न मिलने पर सरयू के किनारे भरत अग्नि प्रज्वलित कर अग्नि में प्रवेश करने वाले ही थे कि तभी विप्रवेश में हनुमान् जी श्री राम की कुशलता और अयोध्या आने का समाचार देते हैं जिससे भरत जी अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं।

-बी-186, आर. के. कालोनी, भीलबाड़ा (राजस्थान)

मानवीय समता के विधायक: संत रैदास

–डॉ. परमिन्द्र कौर

सत्य को पूरी तरह अपनाकर उसी के अनुसार अपने जीवन का निर्माण करने वाला मनुष्य 'संत' कहलाता है। संत और भक्त में इतना ही अन्तर है कि भक्त भावप्रवण रामोपासक है तथा संत आचारवान्, विचारशील समाजसेवी व्यक्ति है। 'संत' को जहां धार्मिक व्यक्ति माना जाता है वहीं वह ऐसा साधक भी है, जिसने ईश्वर का साक्षात्कार कर लिया है तथा वह एक उपदेशक भी है जिसका उपदेश सम्पूर्ण मानव-समाज के लिए कल्याणकारी भी हो।

भक्ति आन्दोलन के दीप-स्तम्भ भक्त तुलसी, सूर, कबीर, पीपा, दादू; जैसे सन्त-महात्माओं को जन्म देने वाली इस भारतभूमि पर कर्मयोगी संतशिरोमणि रैदास का नाम सम्पूर्ण भारतवर्ष में तथा मध्यकाल के गणमान्य स्वामी रामानन्द जी के बारह शिष्यों में सम्मानपूर्वक लिया जाता है। इनके विलक्षण व्यक्तित्व में स्वतन्त्र विचारक,[१] उदार धर्म गुरु,[२] महान् समाज सुधारक तथा परम संत के समस्त गुण विद्यमान थे।

सन्त रैदास भी स्वकालीन समाज की विसंगतियों, विरूपताओं और संत्रासों का स्वयं भोक्ता रहे हैं। मानव-मन की पहचान तथा गहरी मानवीय पीड़ानुभूति ने उन्हें जाति-पाति, ऊँच-नीच, नारी-पुरुष के भेदभाव से ऊपर उठाया था। यही कारण है कि वे मानवीय समता पर भी ज़ोर देते रहे हैं। इनका नाम ऐसे सन्त-कवियों में अग्रगण्य है जिन्होंने शोषित, पीड़ित, दलित समाज को वाणी दी। अज्ञानता के कारण समाज में चतुर्दिक फैली विषमता को मानवीय एकता एवं समता के लाने का प्रयत्न किया। सन्त रविदास जी ने अपनी वाणी में मानव को मानव से जोड़ने के लिए व्यक्तिगत स्तर पर सदाचारक जीवनपद्धति अपनाने के लिए कहा है, जिसका मूल आधार सामाजिक नैतिकता है। वह कहते हैं कि मनुष्य के आचरण और महानता की सर्वश्रेष्ठ कसौटी नम्रता है, जो मनुष्य को उदार बनाकर उसमें अहं की भावना समाप्त करती है साथ ही अपने-पराये का भेद मिटाकर मनुष्यता का दायरा और भी विस्तृत करती है। अगर यही भावना मानवीय समाज में घर कर जाए तो फिर काल्पनिक स्वर्ग के लिए लोग भटकेंगे नहीं इस पर रैदास जी कहते हैं-

जब हम होते तब तूं न ही, अब तू है मैं न ही।[३]

रविदास जी समाज-सुधार के लिए आत्मिक उन्नति पर भी बल देते हुए दिखाई देते हैं-

शत्रु जग में कोई न ही, सब हो अपने मीत।
रविदास सबन सो राखिए निज कुटंभ सी प्रीत।[४]

---

१ संत रविदास: विचारक और कवि; प्रणेता-पदम गुरचरन सिंह, पृ. ४३
२ कबीर ग्रन्थावली; पृ. २३१
३ संत गुरु रविदास वाणी; सम्पादक डा. बी.पी.शर्मा; संवत् २०३५, पृ. ३८
४ वहीं-पृ. ४०

रविदास अपनी साखियों में बार-बार इस विषय पर भी लौटते हैं कि संसार में कोई ऊँच-नीच नहीं, सभी मनुष्य ईश्वर की संतान होने से समान हैं। वे ऊँच-नीच के भाव को मानव-जाति का रोग ठहराते हैं उनका कहना था कि-

जात पात के फेर मंहि उरझि रहइ सब लोग।
मानवता कूं खात हुई 'रविदास' जाति का रोग।।[5]

समाज में समता की स्थापना के इसी उद्देश्य से ही प्रेरित होकर रविदास जी ने इस विषय में विचार प्रकट करते हुए लिखा कि-

रविदास जोउ वेत्ता ब्रह्म कर सोई ब्रह्मन् जान।
ब्रह्म न जोउ जानिहि तउ न ब्रह्मन मान।।[6]
दीन दुखी के हेत जऊ; बारै अपने प्राण।
रविदास उह नर सूर कौ, सांचा छत्री जान।।[7]

संत रैदास जी ने मानवता के आधार पर भी सभी मनुष्यों को एक धरातल पर खड़ा करते हुए कहा है कि-

जब सब कर कोऊ हाथ परा, दोउ नैन दीओ कान।
रविदास पृथम कैसे भये; हिन्दु मुस्लमान।[8]

उनके अनुसार मन्दिर-मस्जिद और राम-रहीम में कोई अन्तर नहीं है। यह अन्तर मानव-कृत है-

रविदास हमारा राम, जोई सोई है रहिमान।
कावा नाभी जानि जहिं; दोऊ एक समान।[9]

मानवतावाद ही एक ऐसा साधन है जो ऐसे समाज का सृजन करता है जिससे सदाचार, समता तथा नैतिकता की नींव का निर्माण होता है। रविदास समस्त मानव-जाति का उपकार तथा उनमें समता की भावना चाहते हैं; जिसके लिए एक सदाचारी एवं मानव-मूल्यों से सुरक्षित समाज का निर्माण आवश्यक है।

संत रविदास की वाणी के अध्ययन से स्पष्ट है कि उनकी वाणी में मुख्यत मानव-जगत् में व्याप्त विषमता के स्थान पर समता की स्थापना और प्रत्येक मनुष्य को उचित मानवीय सम्मान देने की उत्कट अभिलाषा व्यक्त हुई है।

संत रविदास ऐसे महान् संत हैं जिन्होंने सभ्यता को संवारने में सहयोग दिया। इनका सारा जीवन तप और त्याग से परिपूर्ण, देशोत्थान, धर्मरक्षा, समाज-कल्याण एवं मानव-समभाव के सिद्धान्त को व्यापक रूप में समाज का अनिवार्य प्रदेय बनाने में व्यतीत हुआ। सन्त रविदास अपनी बात इस अन्दाज में कहते हैं कि उसका प्रभाव भावुक हृदय के साथ-साथ कठोर या हृदयहीन अभावुक पर भी पड़ता है। रविदास जी ने समाज को समता का तथा एकता का जो अमर संदेश दिया है यदि उसे पूरी तरह अपना लिया जाये तो सारे मतभेद, आपसी झगड़े, वैरभाव तथा पाप सब समाप्त हो जायें।

-प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, गुरु गोबिन्दसिंह खालसा कालेज, माहिलपुर (होशियारपुर)

५ रविदास दर्शन, संपा. आचार्य पृथ्वीसिंह आजाद, साखी-१२१ ६ वहीं-साखी, पृ. १३६
७ वहीं-साखी, पृ. १३८ ८ वही-साखी, पृ. ११८ ९ वहीं-साखी, पृ. १२१

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक

–आचार्य भगवान देव 'चैतन्य'

यूँ तो भारतवर्ष के इतिहास में अनेकों महापुरुषों ने जन्म लिया है मगर उन में से कुछ–एक समाज की समूची धारा को ही बदलने की प्रतिभा और साहस रखते थे। बालगंगाधार तिलक जी ऐसे ही अद्‌भुत महापुरुषों में से एक थे। इनका जन्म २३ जुलाई सन् १८५६ में हुआ। ये अपने बचपन से ही अद्‌भुत प्रतिभा के मालिक थे। कानून स्नातक होने के बाद इन्होंने अपनी प्रतिभा के चमत्कार दिखाना आरंम्भ किया। इन्होंने पूना के न्यू इंगलिश स्कूल, डक्कन एजूकेशन सोसाईटी तथा फर्ग्यूसन कालेज की व्यवस्था अपने हाथों में लेकर शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी कार्य किया। आगे चलकर इन्होंने ही कांग्रेस में कुछ जुझारूपन पैदा किया, अन्यथा उनसे पूर्व स्वतन्त्रता की मांग मानों एक औपचारिकता–भर ही थी। उस मांग में अधिकार के स्थान पर गिड़गिड़ाहट और किसी याचक जैसी प्रवृत्ति लगती थी। इसके विपरीत उन्होंने अपने पर 'केसरी' में लिखा–'भारत में अंग्रेजी नौकरशाही से अनुनय–विनय करके हम कुछ नहीं पा सकते। ऐसे प्रयास करते रहना तो पत्थर पर सिर टकराने के समान है।' इसलिए उन्होंने साफ शब्दों में कहा–'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और इसे हम लेकर रहेगें।' उस समय इस प्रकार की सिंहगर्जना करने वाले वे एकमात्र महापुरुष थे। उनके इस उद्‌घोष से स्वतन्त्रताप्राप्ति की दिशा में लोगों में एक नए जोश–खरोश की भावना पैदा हुई। उनकी इस प्रखरता के कारण उन्हें कुछ लोगों ने एक्टीमिस्ट तक की संज्ञा दी मगर यह एक ध्रुव सत्य है कि उनके साहसिक व्यक्तित्व के कारण ही गर्मदल का उदय हुआ। जिससे स्वतन्त्रताप्राप्ति की दिशा में सक्रिय प्रयास किए गए। बाल,लाल,पाल की टोली उस समय क्रान्ति के पर्याय माने जाते थे। यदि भारत को तिलक जी का व्यक्तित्व न मिलता तो संभवत: इतनी जल्दी स्वतन्त्रता का सपना साकार न हो पाता।

हालांकि इससे पूर्व महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में यह भावना बड़ी ही प्रखरता के साथ प्रशस्त की थी मगर तिलक जी ने उसे व्यावहारिकता का जामा पहनाने की पहल की। स्वराज्य को जन्मसिद्ध अधिकार घोषित करके उन्होंने नवयुवकों के रक्त में संचार पैदा किया जो निरन्तर उग्रता धारण करता चला गया। उनके व्यक्तित्व से प्रेरित होकर कितने ही युवक भारतमाता की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व आहुत करने के लिए अग्रसर हो गए। उनके व्यक्तित्व की इस प्रखरता ने ही उन्हें भारत के स्वतन्त्रता–संग्राम में अमर कर दिया। सन् १८९७ में तिलक जी मुम्बई विधान परिषद् के सदस्य चुने गए तथा उन्होंने बहुत ही निडरतापूर्वक सरकार के कार्यकलापों की आलोचना की। महाराष्ट्र में अकाल तथा पूना में प्लेग से पीड़ित आम जनता की उपेक्षा के भाव को देखते हुए दो युवकों ने पूना के प्लेग कमीश्नर रैंड तथा एक और अंग्रेज अधिकारी की हत्या कर दी। तिलक जी का इस

हत्या से हालांकि कोई सम्बन्ध नहीं था मगर अंग्रेज सरकार ने उन्हें गिरफतार कर लिया तथा १८ महीने का कठोर कारावास दे दिया। इसके बाद सन् १९०८ में सरकार ने उन पर राजद्रोह का मुकदमा बनाकर माण्डले जेल भेज दिया।

व्यक्ति के कर्म ही उसकी सच्ची पहचान हुआ करती है, बाहरी वेशभूषा या शारीरिक बनावट नहीं। सेठ गोबिन्ददास जी ने जब उन्हें सर्वप्रथम देखा तो उनके साधारण व्यक्तिगत के बारे में वे लिखते हैं–गेंहुआ रंग, न ठिगना और न ऊंचा तथा न दुबला और न मोटा शरीर, देखने में जरा भी आकर्षक नहीं। सिर पर मराठी पगड़ी, ऊपर के शरीर पर मराठी ढंग का अंगरखा और उस पर दुपट्टा। अंगरखे के नीचे धोती और पैरों में मराठी ढंग के लाल चप्पल। जिस प्रकार सूरत–सीरत अनाकर्षक उसी प्रकार वेशभूषा भी....' इस प्रकार के साधारण व्यक्तित्व के व्यक्ति ने अपने ओजस्वी विचारों और शेरदिली के कारण जननायक के पद को सुशोभित किया। जननायक भी साधारण नहीं बल्कि विनोवा जी ने उन्हें 'अप्रतिम जननायक' से सम्बोधित किया था। एक स्थान पर वे लिखते हैं–'तिलक के विषय में जब मैं कुछ कहने लगता हूँ तो मुंह से शब्द निकलना कठिन हो जाता है। गद्‌गद् हो उठता हूँ। साधु सन्तों का नाम लेते ही मेरी जो स्थिति होती है, वही इस नाम से भी होती है। मानों उनके स्मरण में ही यह शक्ति संचित है। तिलक जातित: ब्राह्मण थे, लेकिन जो ब्राह्मण नहीं हैं, वे भी उनका स्मरण कर रहे हैं। तिलक महाराष्ट्र के मराठे थे लेकिन पंजाब के पंजाबी और बंगाल के बंगाली भी उन्हें पूज्य मानते हैं। हिन्दुस्तान तिलक का ब्राह्मणत्व और उनका मराठापन, सब कुछ भूल गया है। यह चमत्कार है.... इसमें रहस्य है.... इस रहस्य में तिलक का गुण तो है ही लेकिन हमारे पूर्वजों की कमाई का भी गुण है। जनता का एक गुण और तिलक का एक गुण, दोनों के प्रभाव से यह चमत्कार हुआ कि ब्राह्मण और महाराष्ट्रीय तिलक सारे भारत में सभी जातियों द्वारा पूजे जाते हैं.... उन्होंने श्री राम तथा महामुनि वशिष्ठ, शिवाजी आदि के साथ उनकी तुलना करते हुए कहा है कि अपने महान् कृत्यों के कारण व्यक्ति अपने नाम को ऐसी सार्थकता प्रदान करता है कि दूसरों के लिए वह नाम प्रेरणास्रोत बन जाता है। उनकी आस्था है कि सैकड़ों वर्षो के बाद भी तिलक का नाम ऐसा ही पवित्र माना जाएगा.... इतिहास के आकाश में उनका नाम तारे के समान चमकता रहेगा...' अपने महानतम एवं सार्वजनिक कार्यों के कारण व्यक्ति किसी एक जाति, स्थान का नहीं रहता बल्कि वह प्रत्येक व्यक्ति का पूजनीय बन जाता है। ऐसी ही महान् विभूति को वास्तव में अप्रतिम जननायक की उपाधि मिला करती है। वे जनसाधारण में कितने लोकप्रिय थे इसका प्रमाण उनके जीवन की उस घटना से मिलता है जो १९१६ में लखनऊ में कांग्रेस के ऐतिहासिक अधिवेशन के समय घटित हुई थी। आयोंजकों को सूचना मिली कि तिलक जी स्पैशल ट्रेन से कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने के लिए लखनऊ आ रहे हैं। यह सूचना प्रत्येक के लिए उत्साहवर्धक और स्फूर्तिदायक बन गई। उनके स्वागत की तैयारी होने लगी। इस सम्बन्ध

में तनसुखराम गुप्त जी लिखते हैं कि इस पर गर्म दल और नरम दल में तीव्र मतभेद हो गया कि स्वागत मात्र स्टेशन पर हो या उनका जलूस निकाला जाए। साफ था कि यदि जलूस निकाला गया तो जनता-जनार्दन कांग्रेस-अध्यक्ष के जलूस से अधिक तिलक के शानदार जलूस का स्वांगत करेगी। यह अध्यक्ष का अपमान होगा। फलत: स्वागतसमिति की बैठक हुई। निर्णय लिया गया कि तिलक जी का स्वागत केवल स्टेशन पर ही किया जाएगा, शहर में सवारी नहीं निकाली जाएगी। उन्हें मोटर में बिठाकर शहर के बाहर की ओर से निकालकर अधिवेशन स्थल पर ले आया जाऐगा। इस निर्णय से विद्यार्थियों में विक्षोभ फैल गया। वे इस निर्णय का विरोध करने की योजना बनानें लगे। पं. बिस्मिल इस अधिवेशन में उपस्थित थे। उन्हें जब विद्यार्थियों के निर्णय का पता चला तो उन्होंने अपना सक्रिय समर्थन देने का निर्णय किया और विद्यार्थीवर्ग को सूचना दे दी। श्री बिस्मिल के सहयोग से यह निर्णय हुआ कि जैसे ही लोकमान्य स्पैशल ट्रेन से उतरें, उन्हें घेर कर कार में बिठा लिया जाए और सवारी निकाली जाए।

लोकमान्य के स्वागतार्थ लखनऊ स्टेशन पर जनता का अपार समूह उपस्थित था। तिलक जी की जयजयकार से मानों गगन फटा जा रहा था। जनता अपने प्रिय नेता की जयकार के द्वारा ब्रिटिश सरकार के प्रति अपना रोष प्रकट कर रही थी। स्पैशल ट्रेन आई तथा ज्यों ही लोकमान्य जी नीचे उतरे नरमदल वालों ने उनका अभिवादन-अभिनन्दन किया और पलक झपकते ही कांग्रेस स्वयंसेवकों ने घेरा डालकर उन्हें कार में बिठा दिया। श्री बिस्मिल की योजना धरी ही रह गई, पर वे भी हार मानने वाले नहीं थे। जैसे ही मोटर स्टार्ट होने लगी वैसे ही वे और एम.ए. का एक छात्र मोटर के आगे लेट गए। नरम दल के नेता उन्हें हटाने के लिए दौड़े, किन्तु वे कब मानने वाले थे। समझाने बुझाने का परिणाम यह हुआ कि और अनेक लोग उनकी कार के आगे बैठ गए। सत्याग्रही अपने आग्रह पर अटल रहे। कांग्रेस नेताओं में गर्मागर्मी होने लगी। इन सत्याग्रहियों को नेतागण फटकारने लगे। परिणामत: बिस्मिल रो पडे। उन्होंने अवरुद्ध कण्ठ से कहा-'मोटर मेरे ऊपर से निकाल ले जाओ।' उसी समय विद्यार्थी वर्ग और अधिक उत्तेजित हो गया और किसी ने मोटर का टायर काट दिया। गाड़ी बैठ गई। तिलक को ले जाने के लिए कांग्रेस अध्यक्ष की गाड़ी मंगवाने का प्रस्ताव रखा गया, किन्तु स्वागत-समिति के सदस्यों ने इसे स्वीकार नहीं किया। तिलक जी मोटर से उतर गए। उन्होंने बिस्मिल और उनके साथियों को समझाने का प्रयास किया किन्तु बालसेना के हठ के आगे किसी की न चली... कुछ विद्यार्थी दौड़कर गए और किराए की एक घोड़ागाड़ी ले आए। उसमें से घोड़े खोलकर मालिक को सौंप दिए गए। लोकमान्य को गाड़ी में बिठाया और बिस्मिल तथा अन्य छात्र गाड़ी को खींचने लगे। इस प्रकार जलूस चल पड़ा। जलूस क्या था, एक शानदार स्वागत था। इतना भारी स्वागत कांग्रेस अध्यक्ष का भी नहीं हुआ था। फूलमालाओं की वर्षा हो रही थी। जयघोष के स्वर लखनऊ की दीवारों को भी

प्रतिध्वनित कर रहे थे। जनता में उत्साह था, जोश था, लोकप्रिय नेता के स्वागत की होड़ थी। हर आदमी उनकी गाड़ी का वाहक बनने में अपना जीवन सार्थक समझ रहा था.... विशाल जलूस चला जा रहा था। पेड़ों पर, मकानों की छतों पर, छजों पर, बिजली के खंभों पर सब जगह मानव ही मानव थे। सभी अपने प्रिय नेता पर फूल बरसा रहे थे और उच्च स्वर में जयजयकार कर रहे थे।

यह ऐतिहासिक स्वागत इस बात की गवाही देता है कि लोकमान्य जी लोगों में कितने मान्य थे। उन्होंने मन, वचन, कर्म से स्वयं को स्वतन्त्रता-संग्राम में आहुत कर दिया। उन्हें अनेक प्रकार की यातनाएं दी गईं मगर उनकी साधना अविरल चलती रही। वे अपने आप में ऊर्जा और संजीवता के उज्ज्वल स्रोत थे। वे साहस और निर्भीकता की अप्रतिम मूर्ति थे। अन्तत: उन पर मुकदमा चलाया गया। उन्हें अदालत के कटघरे में ला खड़ा किया गया। दिन के ग्यारह बजे सरकारी वकील कहने लगा, 'किंग्सफोर्ड पर बम्ब फेंकने वाले खुदीराम बोस और प्रफूल्ल चाकी आपके ही शिष्य थे.... आपके केसरी और मराठा में प्रकाशित लेख अंग्रेजी शासन को उखाड़ फैंकने की साजिश है...आपने सम्राट् और सरकार के विरुद्ध क्रान्ति और बगावत का झण्डा उठा रखा है, अत: आप दोषी हैं... अदालत से प्रार्थना है कि वह साम्राज्य के हित में अभियुक्त को कठोर सजा दे।' जज ने तिलक जी से पूछा, ' आपका जुर्म सिद्ध हो रहा है, क्या आपको कुछ कहना है?' तिलक जी का चेहरा तमतमा उठा। उन्होंने जज को सम्बोधित करते हुए कहा, 'मुझे जो कहना है उसे सरकार सुनने के लिए तैयार नहीं है। कितना जुल्म है कि हमें अपने ही देश में अपनी सच्ची बात कहने का भी अधिकार नहीं है। हम अपने देश, अपनी भाषा और अपने तिरंगे की रक्षा के लिए कुछ कहें तो उसे विद्रोह कहा जाता है। एक तिलक को सजा देने से कुछ नहीं होगा, इससे तो सैंकडों तिलक जन्म लेगें और सभी का एक ही नारा होगा- स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और इसे हम लेकर रहेगें। इन विचारों को अदालत ने बहुत ही खतरनाक माना और तिलक जी को छ: साल की कठोर सजा सुना दी। तिलक जी ने जेलों में कठोर यातनाएं सहीं मगर उनका कथन अक्षरश: सत्य था। उनके तप और त्याग से कितने ही युवक स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर तैयार होकर आहुत हो गए और लोकमान्य की घोषणा को चरितार्थ करके दिखा दिया कि हम स्वतन्त्रता प्राप्त करके ही रहेगें। इस प्रकार के जननायक कभी मरा नहीं करते हैं बल्कि तिलक जी आज भी प्रत्येक भारतीय के हृदय में वैसे ही उत्साह का सृजन करने में सक्षम हैं। बलिदानियों का बलिदान आने वाली पीढ़ियों के लिए स्वत: एक प्रेरणास्रोत बन जाता है। आज हम उन्हें हार्दिक श्रद्धा से स्मरण करते हुए प्रतिज्ञा करें कि हम स्वतन्त्र भारत की अस्मिता और अखण्डता के लिए निरन्तर संघर्षरत रहेगें....। अन्तत: भारत मां का यह सपूत अनेक संघर्षों में जूझता हुआ अस्वस्थ रहने लगा तथा १ अगस्त, १९२० को इस जाज्वल्यमान नक्षत्र का अवसान हो गया।

महादेव, सुन्दरनगर, जिला. मण्डी-१७५०१८ (हि. प्र.)

पर्व संदेश

–श्री कृष्णचन्द्र टवाणी

भारत प्राचीन काल से ही पर्वप्रधान देश रहा है। वैदिक काल से आज तक वह पर्वपरम्परा प्रकारान्तर से सतत प्रवाहित है, यह पृथक् बात है कि पर्वों की प्रकृति प्रकृति के समान एकरूप न रहकर सतत बदलती चली आ रही है। पर उनका उद्गम भारतीय पराम्परागत संस्कृति और सभ्यता ही रही है। परन्तु उन पर्वो का भी कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य रहा होगा जो अब भी उसमें विद्यमान है। हमारा देश धर्म से अनुप्राणित है तथा प्राचीन समय से ही हमारे यहाँ विभिन्न अवसरों पर पर्व, उत्सव, त्यौहार एवं महापुरुषों की जयन्तियों का आयोजन धार्मिक-भावना से होता रहता है। हमारे यहाँ पर्वों का आयोजन न केवल धार्मिक-भावना से ओतप्रोत है अपितु इनमें विज्ञान, संस्कृति, पर्यावरण व स्वास्थ्य का भी तालमेल रहता है। पर्वों से जहाँ जनजीवन में उल्लास व आनंद का वातावरण विकसित होता है वहाँ कई प्रकार की सामाजिक, सांस्कृतिक, पौराणिक शिक्षायें भी प्राप्त होती हैं। फाल्गुन व चैत्र मास (मार्च और अप्रैल) में कई पर्व मनाये जाते हैं तो आइये! इनकी महत्ता व संदेश क्या है इसकी जानकारी प्राप्त करें।

शिवरात्रि-

फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी को शिवरात्रि का पर्व देवाधिदेव महादेव के निमित्त मनाया जाता है। महादेव शिव हमारे पापों को नष्ट करते हैं। शिवरात्रि का पर्व जहाँ शिव के कल्याणकारी स्वरूप का बोध कराता है वहाँ यह महर्षि दयानंद के बोध-दिवस की घटना से भी सम्बन्धित है। इसी दिन महर्षि दयानंद ने पाखंड, ढोंग, झूठ, अन्याय आदि को जड़ों से उखाड़ने का निश्चय किया था तथा सांसारिक जीवन को त्याग कर तपस्यामय जीवन व्यतीत करने का संकल्प लिया था। शिवरात्रि के दिन उपवास व व्रत किया जाता है, वह स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है। इस दिन कई ऐसे फलों का सेवन किया जाता है जो स्वास्थ्य एवं आयुवर्धक होते हैं। शिवरात्रि का पर्व हमें आत्मबोध व आत्मनिरीक्षण की प्रेरणा देता है।

दिव्य होली-

आनंद और सुख-भोगों में पड़कर जीवन विलास-प्रिय और आलसी न बन जाए, यह होली का दिव्य संदेश है। इस सम्बन्ध में एक बड़ी मार्मिक और प्रसिद्ध कथा है-इस कथा में शिव-तत्त्व का भव्य दर्शन है। शिव उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर ध्यानावस्थित थे। कामदेव अपने शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के पाँच बाणों से उन पर प्रहार करते हैं। शिव अपने तप का तीसरा नेत्र खोल कर उसको भस्म कर देते हैं। होली इसी तप योग और संयम के प्रेरक मदन-दहन-उत्सव का दिव्य संदेश लेकर

आती है। काम-रहित जीवन में बसंत का सुख सौगुना हो जाता है। यही इसका सार समझना चाहिए।

होली का दिव्य रूप-विष-पान- वर्तमान में प्रत्येक नगर और परिवार में नित्य नये-नये संघर्षों से, परस्पर मत-भेद और लड़ाई-झगड़ों का विष फैला रहा है। इस विष से सर्वत्र अशांति फैलती है, नर-नारी झुलसने और जलने लगते हैं। जो इस विष को पी लेता है वही शिव है, उसी से आनंद और मंगल की वृद्धि होती है। होली पर जो मादक पदार्थ पीने की प्रथा है उनका वास्तविक रूप परस्पर कलह, क्रोध आदि का विष-पान है। विनम्रता, सहनशक्ति, क्षमा और प्रसन्नता में होली का रहस्य है।

सांस्कृतिक होली-

होली का सांस्कृतिक स्वरूप, पवित्रता और प्रेम का प्रतीक है। पवित्र जीवन की दृढ़-शिला पर उन्नति का भव्य भवन खड़ा होता है। पवित्रता का मेरूदण्ड सत्य है। महापुरुषों के अनुभव से छनकर एक निश्चित सिद्धांत निकला है- "**सत्यमेव जयते नानृतम्, सत्येन पन्था विततो देवयानः।**"

सत्य की सदा विजय होती है असत्य की नहीं। सत्य दिव्य-लोकों की प्राप्ति का मार्ग है। एक पुरानी कहावत है-सांच को आंच कहाँ? होली अपनी सहस्रों ज्वालाओं से इस कहावत की प्रतिष्ठा करती है। प्रह्लाद ने प्रेम और पवित्रता का नारा ऊँचा उठाया था, समता के व्यवहार से वह जन-जन का हृदय-सम्राट् बन गया। सेवा की वेदी पर उसने अपना जीवन चढ़ा दिया और ऋत तथा सत्य के मंगल मार्ग पर अग्रसर हुआ। साम्राज्यवादी हिरण्यकशिपु, अपने ही पुत्र की लोकप्रियता को न देख सका। प्रह्लाद के उदार और समव्यवहार से उसे अपनी आसुरी-नीति के अंत होने की आशंका हो गई। असाम्य, घृणा, अत्याचार और निरंकुशता के सन्मुख प्रह्लाद को जला देने के लिए होलिका उसे गोदी में लेकर बैठ गई। सत्य की महिमा अपार है। होलिका अपनी ज्वालाओं में जल गई और प्रह्लाद ज्यों का त्यों रहा। "**सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन्।**" जनता के सेवकों को सत्य की नाव पार लगाती है। यह तो इससे शिक्षा मिलती ही है।

आनन्द की बौछारें-सत्य के साथ-साथ होली सुन्दरता का भी संदेश देती है। सुन्दरता का मूल-मंत्र प्रसन्नता है। मनुष्य को सच्चा मनुष्य बनने के लिए जितनी शिक्षा, ज्ञान और बुद्धि की आवश्यकता है, उससे कहीं अधिक आवश्यकता है प्रसन्नता की। प्रसन्नता ही जीवन है, वह सौभाग्यशाली है, जिसके मुख पर प्रसन्नता खेलती है। जीवन में सत् और चित् का भाव रहता है परंतु आनंद किसी ही सुकृति को प्राप्त होता है। आनंद के मिलते ही जीव सच्चिदानन्दमय हो जाता है। क्षुद्र और संकीर्ण जीवन में आनंद नहीं रहता। निराशा, मलिन और उदास जीवन में मृत्यु का बल बढ़ता है। होली आनंद की बौछारों से जीवन को तर कर

देती हैं, समष्टि के बीच में लाकर मनुष्य को उमंग और उत्साह से भर देती है। सार्वजनिक उत्सव में संगठित-शक्ति, प्रेम और सद्भावना का उपहार देती है।

जीवन का दर्शन- जिसे चाह और चिंताओं से छुट्टी नहीं मिलती, वह सबसे बड़ा रोगी है। जिसके मन में घुन लग जाता है वही दु:खी है। आलसी, शिथिल, दीन, प्रगतिहीन और निस्तेज होकर जीना केवल सिसकते हुए सांस लेना है। उसमें जीवन नहीं होता। जीवन का दर्शन वहां होता है जहां कर्म का बोझ मन और बुद्धि को नहीं झुका पाता। उमंग और उत्साह के हाथ-पैर नहीं टूटते, प्रसन्नता कुम्हलाती नहीं और आत्मा सदा हंसती खेलती रहती है।

प्रेम-

होली उत्सव में जितना स्थान प्रसन्नता को मिलता है, उससे कहीं अधिक प्रेम को दिया जाता है। अपनी ही प्रसन्नता नहीं, प्रेम और सद्भावना से सबकी प्रसन्नता होली का ध्येय है। भारतीय संस्कृति में "वसुधैव कुटुम्बकम्" की विराट् कल्पना है। उदार पुरुषों के लिए सारा विश्व अपना ही परिवार है। संसार में सब अपने हैं, कोई दूसरा नहीं है। इस महाभाव का रचनात्मक रूप होली के उत्सव में देखा जाता है। प्रेमपूर्वक अपरिचित सबको हृदय से लगाकर सद्भावना सहित पुष्पमाला पहनाना, चंदन-गुलाल, अबीर आदि मांगलिक चिह्न लगाना, परस्पर प्रेम, मैत्री, मुदिता के द्योतक हैं। उन्नत राष्ट्रों में प्रेम और सद्भावना की सहस्रमुखी धाराएँ बहती हैं। प्रेम परमेश्वर का रूप है। प्रेम के बिना संसार सूना और नीरस है।

ऊँच-नीच के भेद-भाव, राग-द्वेष, प्रान्तीयता और दलबन्दी को होली की पवित्र अग्नि में भस्म कर देने से दशों दिशाओं में प्रकाश, प्रेम और मंगल भर जाता है। कठोर और गन्दे शब्द बकने, किसी का हृदय दुखाने और उन्मत्त होने में होली नहीं है। होली आती है-खेलने-कूदने और प्रसन्न होने के लिए, हृदय के कोने-कोने का मैल धो डालने के लिए, विश्व को शांति, प्रेम, मैत्री, करुणा और मुदिता के एक रंग में रंग देने के लिए। राष्ट्र के नव-निर्माण के लिए जिस प्रेम, सद्भावना, चरित्र, उत्साह, कर्मशीलता और प्रसन्नता की आवश्यकता है, उसे जुटा देने के लिए होली का उत्सव है।

नव सम्वत्सर

नव सम्वत का प्रथम दिन चैत्र शुक्ल प्रतिपदा "नव सम्वत्सर" चैत्र नवरात्र को हर्षोउल्लास के साथ मनाया जाता है। महाराष्ट्र में इसे गुड़ी- पड़ेवा के नाम से मनाते हैं। यह दिन कई कारणों से महत्त्वपूर्ण है। सृष्टिरचना का प्रथम दिवस विक्रमसम्वत्सर का प्रारम्भिक प्रथम दिवस, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का राज्याभिषेक, आर्य- समाज का स्थापना-दिवस, चैत्र नवरात्रि की दुर्गा उपासना का प्रथम दिवस, भारतीय कालगणना का प्रथम दिवस, शालिवाहन, शक सम्वत का प्रथम दिवस, डॉ.

केशवराव बलिराम हेडगैवार का जन्म दिवस, सिन्धी समाज के संत झूलेलाल का जन्म दिवस आदि अनेक घटनाओं की लड़ियों एवं स्मृतियों की मणियों से जुड़ा हुआ है यह दिन। नव सम्वत के दिन नीम की कोमल पत्तियों, कालीमिर्च व मिश्री को मिलाकर खाना बहुत ही शुभ माना जाता है। इनके सेवन से शरीर निरोग रहता है। इस नीम व शक्कर को मिश्रित कर खाने के पीछे एक अति मधुर भावना छिपी हुई है। जीवन में कभी सुख-दु:ख अकेले नहीं आते हैं। सुख के पीछे दु:ख तथा दु:ख के पीछे सुख का क्रम चलता रहता है। नीम की कडुवाहट तथा मिश्री की मिठास हमें यह प्रेरणा देती है कि जीवन में कितने ही कष्ट आयें उनको हँसते-हँसते सहन करना चाहिए। हमें यह पर्व कर्त्तव्यपालन के साथ-साथ प्रभुभक्ति की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देता है।

नवरात्र

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक के नौ दिन "नवरात्र" कहे जाते हैं। यह पर्व वर्ष में दो बार आता है एक चैत्र में बासन्तिक नवरात्र और दूसरा आश्विन में शारदीय नवरात्र। प्रत्येक हिन्दू-गृहस्थ के लिए दोनों नवरात्रों का मानना फलप्रद बतलाया गया है। "नवरात्र" भारतीय गृहस्थ के लिए शक्ति-पूजन, शक्ति-सम्वर्धन और शक्ति-संचय के दिन लेकर आता है। नवरात्र में शक्ति की आराधना तथा शास्त्रों द्वारा बतलाये गये व्रत का पालन करके, इसके माध्यम से त्रिविध शक्ति का संचय करके हम अपनी भावी जीवन की यात्रा के पथ पर अग्रसर होते हैं। सभी वेदों और शास्त्रों का यही मत है कि सूर्य, शिव, विष्णु, गणेश और शक्ति, अलग-अलग होने पर भी एक ब्रह्म के रूपान्तर हैं। प्रत्येक हिन्दू घर में कुलदेवी के रूप में किसी न किसी नाम से शक्ति की पूजा की जाती है, जो लोग सौर, शैव, वैष्णव और गाणपत्य हैं, वे भी मुख्य रूप से अपने इष्टदेवों को मानकर, गौणरूप में देवी की उपासना अवश्य करते हैं। "नवरात्र" में देवी (शक्ति) के नौ रूपों का पूजन किया जाता है। इस दिन देवी माँ से प्रार्थना करें कि हे देवी माँ! हम अपराधों सहित आपकी शरण में आये हैं। हम सबका हार्दिक प्रणाम स्वीकार कीजिए। जो भी सद्भाव से आपका पूजन कर रहा हो उसकी हर-एक विपत्ति को दूर कर उसका जीवन अमृतमयी बनाना। जिस घर में आपके नाम का दीपक जल रहा हो उस घर को हर प्रकार के विघ्न से बचाना है। हे माते! जिस श्रद्धा और विश्वास से आपका जागरण (पूजन) किया जा रहा है। उसे आप स्वीकार कर हम सबकी मनोकामनाओं को पूर्ण करना। हे महारानी! आप हम सबको बल बुद्धि देना, हम सब पर अपनी दयादृष्टि बनाये रखना और हम सबका कल्याण करना। अगले नवरात्रों में इसी तरह आप सभी भक्तों के घर नाच-नाच कर पधारो और अपने संग खुशियों का भंडार ले आओ। हमारे जाने-अनजाने में जो भी अपराध हुए हैं उसे क्षमा करना। यह हमारी विनती है। धर्म की

सदा जय हो। भजन कीर्तन व जागरण का प्रचार हो। जो आपका नाम जपे उसकी भी जय जयकार हो।

रामनवमी

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम का पावन जन्म-दिवस चैत्र शुक्ला नवमी को सर्वत्र मनाया जाता है। भगवान् श्री राम त्रेता में अवतरित हुए, मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाये, व्यापक कीर्ति अर्जित की मानव जीवन का आदर्श संसार के सम्मुख उपस्थित किया तथा हर भारतवासी के हृदय-हृदय में रम गये। पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर भगवान् श्री राम चौदह वर्ष तक वनवासी रहे। वन में सीता जी को रावण ने अपहृत कर लिया, श्रीराम के पास उस समय कोई विशेष सैन्यशक्ति नहीं थी, केवल अनुज लक्ष्मण साथ थे। ऐसी असहाय अवस्था में वानरों व रीछों की शक्ति को संगठित कर रावण जैसे महाशक्तिशाली अपराजेय शत्रु को पराजित कर उन्होंने जिस असंभव कार्य को सम्भव कर दिखाया वह उनके बल-बुद्धि का परिचायक है। रामनवमी का पर्व हमें यह संदेश देता है कि धर्म की रक्षा के लिए शुभ कार्य के लिए असुरों से युद्ध करें तो वानर, रीछ, गिद्द आदि पशु-पक्षी तक भी उसमें अपना सहयोग देते हैं। भगवान् श्री राम का आदर्श-जीवन हमें सदैव धर्म व सत्य के मार्ग पर चलने तथा मातृ व पितृ भक्ति का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करता है।

हनुमान् जयंती-

श्री राम के अनन्य भक्त श्री हनुमान् का जन्म दिवस चैत्र सुदी पूर्णिमा को मनाया जाता है। हनुमान् जी की वीरता बुद्धिमत्ता को कौन नहीं जानता? उनकी दूरदर्शिता, बुद्धिचातुर्य से भगवान् श्री राम भी बहुत प्रसन्न हुए थे। बुद्धि, विद्या शील-बल सम्पन्न होते हुए भी हनुमान् जी अभिमान रहित राज्य-निरपेक्ष, अध्यात्म साधक हैं। हनुमान् जी अष्ट सिद्धि नव निधि के दाता हैं। जानकी माता ने हनुमान् जी को ऐसी शक्ति प्रदान की कि वह भक्तों के सभी मनोरथों को पूर्ण कर सकते हैं। हनुमान् जी ने अपनी अटूट, अविरल भक्ति से पूरे भारत को अध्यात्म से ओत:प्रोत कर दिया यदि आज भी हम उनके जीवन से प्रेरणा लेकर प्रभुभक्ति व सुमरिन के लिए प्रतिदिन कुछ समय निकालें तो अपनी आध्यात्मिक शक्ति का विकास कर सकते हैं। हनुमान् जी सेवा के श्रेष्ठ उदाहरण हैं अपार शक्तिशाली होते हुए भी उनमें अहं नाममात्र का नहीं था। सेवाभावी बनें एवं अहं का त्याग करें, यही पावन संदेश है उनकी जयंती का। इस प्रकार भारतीय परम्परा में जो भी था, जिस समाज के जो त्योहार हैं वे सभी किसी न किसी प्रकार परम्परा से प्रचलित मानवजीवन को एक सुखद अनुभूति ही कराते हैं। यह पृथक् बात है कि सबकी अनुभूति एकसमान नहीं पर इन त्यौहारों में भी एक भाव निहित है।

-प्रधान संपादक, ''अध्यात्म अमृत'' ज्ञानमंदिर, सिटी रोड़, मदनगंज-किशनगढ़ (राज.) ३०५८०१

पोलैण्ड का एक अनूठा संस्कृतज्ञ परिवार

– डॉ. सत्यव्रत वर्मा

लगभग दो शताब्दी पूर्व योरुप में संस्कृत-अध्ययन का प्रवर्तन विश्व-साहित्य की अद्‌भुत घटना थी। उससे योरुप की विभिन्न भाषाओं तथा संस्कृत के तुलनापरक अनुशीलन का आरम्भ हुआ जिसकी परिणति तुलनात्मक भाषाविज्ञान तथा तुलनात्मक पुराकथा-विज्ञान जैसी महत्त्वपूर्ण अनुशीलन-पद्धतियों में हुई। वस्तुत: योरुप में संस्कृत के प्रवेश के पश्चात् ही संस्कृत-साहित्य के विमर्श-प्रधान परिशीलन का सूत्रपात हुआ। इस वैज्ञानिक पद्धति के कारण ही प्राचीन भारतीय प्रज्ञा का पुनरन्वेषण तथा पुनर्व्याख्या सम्भव हुई है। आज भी योरुप-सहित संसार के बहुत बड़े भूभाग में देववाणी का किसी न किसी प्रकार से अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। प्रो. विल्सन ने ठीक कहा था कि संस्कृत में पता नहीं क्या गुण है कि उसका जादू विदेशियों के सिर चढ़ कर बोलता है। पोलैण्ड की राजधानी वार्सा के एक सामान्य परिवार की संस्कृत-भक्ति की कहानी सुन कर प्रत्येक संस्कृत-प्रेमी का सीना गर्व से फूल जाता है। इस परिवार के मुखिया श्री तोमाष रुचिंस्कि आरम्भ से ही आध्यात्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं। एक बार वे भ्रमण के लिये बनारस आए। वे जब बनारस में लोगों को मंत्रों का उच्चारण या स्तोत्र-पाठ करते देखते थे, उनके मन में उस कर्णप्रिय भाषा के प्रति अनायास श्रद्धा का भाव भर जाता था, यद्यपि उन्हें तब उस भाषा का नाम तक ज्ञात नहीं था। अपनी टूटी-फूटी अंग्रेजी में पूछने पर उन्हें पता चला कि उन मन्त्रों और स्तोत्रों की भाषा संस्कृत है। उनकी अगली जिज्ञासा थी कि इस भाषा को कैसे सीखा जा सकता है? कुछ सदाशय पण्डितों की कृपा से रुचिंस्कि महाशय को धीरे-धीरे संस्कृत का थोडा-बहुत ज्ञान हो गया परन्तु बोलने का अभ्यास नहीं हुआ। वह इतनी जल्दी सम्भव भी नहीं था। तभी उन्हें पोलैण्ड लौटना पड़ा। वे वाराणसी से संस्कृत की कुछ पुस्तकें अपने साथ ले गये। उन पुस्तकों के स्वाध्याय से समूचे परिवार ने शनैः शनैः स्वयं ही संस्कृत सीख ली, यद्यपि उसने किसी गुरु से एक दिन भी औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं की। तोमाष रुचिंस्कि का पुत्र फिलिप सबसे तेज निकला और उसने संस्कृत बोलने में भी कुछ दक्षता प्राप्त कर ली। परिवार के अन्य लोगों को भी संस्कृत के कुछ वाक्य बोलने का अभ्यास हो गया। यह वस्तुत: उस साहित्यिक

यात्रा का आरम्भ-बिन्दु था जिसकी परिणति कालान्तर में महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों में हुई।

फिलिप के मानस में जो देववाणी की ज्योति कौंधी थी, उसके आलोक से उसकी समूची अन्तरात्मा जगमग हो गयी। संस्कृतज्ञान की पिपासा उसे सन्२००० में संस्कृत-विद्या की सुविख्यात प्रपा, वाराणसी के सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में खींच लाई। प्रवेश परीक्षा के आधार पर उसे उक्त विश्वविद्यालय के संस्कृत के सर्टिफिकेट के पाठ्यक्रम में प्रवेश मिल गया। वह चार वर्ष भारत में रहा। २००४ में वह वापिस पोलैण्ड चला गया, किन्तु अगले वर्ष ही आकार वह पुनः सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में दाखिल हो गया और उसने वहां से शास्त्री द्वितीय वर्ष की परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् उसने अपने देश के वार्सा विश्वविद्यालय से सन् २००९ में एम.ए. परीक्षा पास कर नई उपलब्धि प्राप्त की। साहित्य के निष्ठापर्वूक परिशीलन और सतत अभ्यास से वह संस्कृत का कुशल लेखक बन गया। पोलैण्ड का वह सपूत आज संस्कृत के पाण्डित्य से विभूषित सच्चा ब्राह्मण है, जिसके आचार-व्यवहार तथा ज्ञान-निष्ठा के समक्ष भारत के तथाकथित असंख्य 'ब्राह्मण' पानी भरने के योग्य भी नहीं हैं। फिलिप ने 'षट्त्रिंशत्तत्व' पर परम्परागत शैली में जो विद्वत्तापूर्ण भाष्य लिखा है, उससे भारत के स्वयम्भू पण्डित और पण्डितम्मन्य भी डाह करेंगे। उसमें संस्कृत की प्राचीन पाण्डित्यधारा और योरुप की नवीन अनुशीलन-धारा का रोचक संगम है। उसने वार्सा विश्वविद्यालय से पीएच. डी. की महनीय उपाधि भी प्राप्त कर ली है।

जिसका सुपुत्र इतना प्रतिभाशाली तथा अध्यवसायी हो, वह मां कैसे पीछे रह सकती थी। फिलिप की माता अन्ना रुचिंस्कि बेटे की तरह ही संस्कृत में दक्षता प्राप्त करने को लालायित थी। उसने कई वर्ष वाराणसी में रह कर पहले आरम्भिक शिक्षा ग्रहण की जिससे वह फिलिप की भांति ही संस्कृत-लेखन में निपुण हो गयी, तत्पश्चात् उसने संस्कृत में छह सौ पृष्ठों के लम्बकाय शिरोग्रीव शोधप्रबन्ध की रचना की। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय ने अन्ना रुचिंस्कि को उस शोध प्रबन्ध पर 'विद्यावारिधि' की अत्युच्च उपाधि से सम्मानित किया।

फिलिप की बहन अम्मा ने नेपाली ब्राह्मण लक्ष्मण केन्दल के साथ विवाह किया। केन्दल दम्पती ज्योतिष और पौरोहित्य से जीविकोपार्जन करती है। फिलिप के भाई ने भी वाराणसी में रह कर संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

रुचिंस्कि परिवार जन्म से भले पोलिश ईसाई हो, शिक्षा-दीक्षा, संस्कार तथा परिधान से वह भारत के किसी सुसंस्कृत ब्राह्मण परिवार से भिन्न नहीं है। इन्हीं गोरे तपस्वी ब्राह्मणों के त्याग और अध्यवसाय से विदेशों में संस्कृत जीवित है।

प्रसंगवश यहाँ पोलैण्ड के वार्सा विश्वविद्यालय के संस्कृत के प्रोफैसर एम्. क्षिष्टोफ् बृस्की की चर्चा करना भी उपयोगी होगा। प्रो. बृस्की सात वर्ष तक भारत में रहे- पांच वर्ष बनारस में दो वर्ष दिल्ली में। बनारस में रहते उन्होंने हिन्दी में अप्रतिहत गति प्राप्त कर ली और वे किसी बनारसवासी की तरह बनारसी लहजे में खटाखट हिन्दी बोलते हैं। उन्होंने बनारस में ही संस्कृत का गम्भीर अध्ययन किया और वहीं से 'प्राचीन भारतीय नाट्य का स्वरूप' विषय पर पी एच. डी. उपाधि प्राप्त की। स्वदेश लौटकर वे वार्सा विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग को अपनी विद्वत्ता से आलोकित कर रहे हैं। उनके अध्ययन का प्रिय विषय 'नाट्यशास्त्र' है। उन्होंने धनञ्जय के दशरूपक, सन्धियों, वृत्तियों, त्रिवर्ग के आधार पर भारत के प्राचीन नाट्य वाङ्मय का विशेष विमर्श किया है। बृस्की महाशय हम भारतीयों के लिये आदरणीय और अनुकरणीय हैं।

-9/34, पुरानी आबादी, नामदेव फ्लोर मिल के पास, श्रीगंगानगर (राज:)

यथा प्रसूयमानस्तु फली दद्यात् फलं बहु।
तथा स्याद् विपुलं पुण्यं शुद्धेन मनसा कृतम्।।

महा. ६, अनुगीतापर्व १८

जिस प्रकार लोक में प्रकृति के अनुसार किसी वृक्ष पर फल आने के समय पर बहुत से फल स्वतः ही आ जाते हैं। इसी प्रकार लोक में किसी व्यक्ति द्वारा बिना छलकपट के शुद्ध हृदय द्वारा किये गये पुण्यों का फल अधिकाधिक रूप से उसको बिना प्रयास के मिल जाता है।

पलटवार (कहानी)

–श्री शशांक मिश्र भारती

अफ्रीका के किसी जंगल की बात है। वनराज भयंकर गरमी से बचने के लिए ठण्डक और आराम के लिए जंगल के किनारे पर बह रही नदी में अपने मित्रों के साथ बैठे थे। राजा होने से घमण्ड के साथ-साथ कुछ लापरवाही भी थी। किसी को यह सोचने का अवसर न था, कि दोपहर का समय है। ऊपर से गला सुखाने वाली गरमी। छोटे जानवर अपनी प्यास कहां बुझायेंगे। उनको अकारण दूर जाना पड़ेगा।

उसी समय प्यास से व्याकुल जंगली भैसों के झुण्ड में से कुछ भैंसे पानी की तलाश में आईं। बाघों को बैठा देखकर भयवश वापस मुड़ीं थीं कि हड़बड़ाहट में बाघों ने आक्रमण कर दिया। बड़े भैंसे तो हाथ आये नहीं। पर उनका एक छोटा बच्चा हाथ चढ़ गया। सभी बाघ उसके पीछे पड़ गये। आगे-आगे वह बच्चा और पीछे-पीछे बाघों का झुण्ड।

वह भागते-भागते नदी के किनारे पहुंचा। जब जान बचाने का कोई रास्ता न दिखा। तो सोचा न विचारा और नदी में छलांग लगा दी। बाघ भी कहां हार मानने वाले थे। उन्होंने ने भी उसके ऊपर से छलांग लगा दी तथा सभी उसको बाहर खींचने लगे।

अभी इस कसमकस को कुछ ही देर हुई थी कि न जाने कहां से एक मगरमच्छ आ गया। उसने भी पीछे से भैंसे के बच्चे को ही पकड़ लिया। अब खींचतान दोनों पक्षों में होने लगी। कभी बाघ बाहर को खींच रहे थे तो कभी मगरमच्छ अन्दर की ओर। संकट से घिरे उस भैंस के बच्चे का तो हाल बहुत ही बुरा हो रहा था। जैसाकि आगे कुआं हो और पीछे खाई। पर होना तो कुछ और ही था। कुछ ही देर के बाद जल में रहकर मगर से बैर वाली कहावत चरितार्थ होने लगी। अकेला मगरमच्छ और कई बाघ। फिर भी पलड़ा कभी बाघों का, तो कभी मगर का भारी रहा। दोनों ओर से पूरा प्रयास।

अन्त में वहीं हुआ, जिसकी संभावना थी। जंगल का राजा विजयी हुआ। मगर निराश होकर नदी में वापस चला गया। बाघ उस बच्चे को खींचकर नदी से बाहर निकाल लाये और अपने शिकार को खाने की तैयारी करने लगे।

ठीक इसी समय सामने से धूल के बादल उठते दिखायी दिये। कुछ ही देर में भैंसों के झुण्ड के झुण्ड दिखने लगे। अपने खुरों को बार-बार जमीन में पटककर धूल उड़ाना और जोर-जोर से रंभाना सुनकर बाघ समझ गये, कि अब महायुद्ध

होने वाला है। ये अब तक जीवित अपने उस बच्चे के लिए ज़ी-जान लगा देंगे।

भैंसों ने आते ही चारों ओर से बाघों पर आक्रमण कर दिया। एक तो उनकी संख्या अधिक थी। दूसरे उनकी आंखों में अपने बच्चे को बचाने का संकल्प, अद्भुत पराक्रम पैदा कर रहा था।

बाघ पहले ही जल में मगर से संघर्ष कर थक चुके थे। इस बच्चे ने नदी में छलांग लगाने से पहले दौड़ाया भी था। फिर भी उन्होंने अपने शिकार को बचाने का पुरा प्रयास किया, लेकिन वे दौड़ा-दौड़ा कर सींगों और खुरों की मार कब तक झेल पाते। भाग खड़े हुए। बाघ लगे तो अपने शिकार के चक्कर में थे, पर यहां पासा उल्टा पड़ा। शिकार तो हाथ से गया ही। कुछ भैंसों ने बाघों को दूर तक दौड़ाया भी।

इस विजय से जंगली भैंसे बड़े प्रसन्न हुए। होते भी क्यों न, उन्होंने अपनी संगठनशक्ति के बल पर आज जंगल के राजा को भागने पर विवश जो कर दिया था। उनके मुख में जाते-जाते अपने बच्चे के प्राण बचाये थे।

सबसे अधिक प्रसन्नता उस भैंस के बच्चे की मां को थी, जिसका बच्चा इतना सब कुछ हो जाने के बाद सुरक्षित था। यमराज के घर से मानों उसके प्राण वापस आ गये थे।

वह बार-बार अपने बच्चे को दुलार रही थी। बच्चा भी अपनी मां से लिपटा जा रहा था। दूसरी ओर खड़ा भैंसों का झुण्ड इस स्नेह को पाने के लिए अपने को धन्य समझ रहा था।

-संपादक, देवसुधा, हिन्दी सदन बड़ागांव शाहजहांपुर, २४२४०१ (उ. प्र.)

अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपोमूलं घृतं पयः।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्।।

युधिष्ठिर के प्रश्न करने पर भगवान् श्रीकृष्ण स्पष्ट कर रहे हैं कि व्रती होने पर भी व्यक्ति किन-किन परिस्थितियों में क्या वस्तु ग्रहण कर सकता है, तथा किन वस्तुओं के ग्रहण करने पर उसका व्रत भंग नहीं होता जल, दूध, घी, हवि (यज्ञ में ग्रहण की जाने वाली वस्तुएं) इनको ग्रहण करने पर तथा ब्राह्मण की इच्छा पूरी करने पर एवम् गुरु की आज्ञा पालन करने पर तथा औषधि ग्रहण करने के लिए उपयुक्त वस्तु का सेवन करने पर व्रत भंग नहीं होता।

शब्द ही ब्रह्म अथवा सर्जक है क्योंकि शब्दों से ही इस त्रिगुणात्मक संसार का सृजन संभव है

– श्री सीताराम गुप्ता

बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है अहं ब्रह्मास्मि अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ। शंकराचार्य का अद्वैतदर्शन भी कहता है कि– ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः– अर्थात् ब्रह्म सत्य है जगत् असत्य तथा जीव ब्रह्म ही है उससे भिन्न नहीं है। सूफीमत में भी यही कहा गया है, 'अनलहक' अर्थात् मैं ही सत्य अथवा ईश्वर हूँ। सूफ़ी मत का आधारभूत दर्शन ''इब्नुल अरबी'' का वहदतुल वुजूद अथवा तौहीद (एकेश्वरवाद) है। यह अद्वैतदर्शन का ही सूफी संस्करण है। मंसूर हल्लाज का कथन अनलहक़, जिसके लिए उन्हें सूली पर चढ़ना पड़ा भी अहं ब्रह्मास्मि का अरबी पर्याय है। कहीं मनुष्य को ईश्वर का अंश माना गया है तो कहीं उसे विस्तृत ब्रह्माण्ड का लघु रूप माना गया है। कहा गया है कि संपूर्ण सृष्टि की रचना ईश्वर की इच्छामात्र से हुई है। वह अकेला था। उसने सोचा, मैं अनेक हो जाऊँ और उसके ये सोचते ही सृष्टि का निर्माण हो गया। इन विभिन्न विचारों के अनुसार यदि ईश्वर सृष्टि का रचयिता है तो उसका अंश होने के नाते मनुष्य भी सृष्टि का रचयिता ही हुआ। मनुष्य भी ईश्वर का अंश अथवा ब्रह्माण्ड का लघुरूप हो ने के कारण ऐसी ही क्षमता से परिपूर्ण है इसमें संदेह नहीं। उसमें भी वो शक्ति अवश्य ही विद्यमान है। कम से कम वह रचना अथवा विकास का माध्यम तो बनता ही है।

मनुष्य में जो सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व या शक्ति है वह है उसकी विचारशक्ति। अपनी विचारशक्ति को मनुष्य शब्दों के माध्यम से ही प्रकट करता है। हर शब्द का एक निश्चित अर्थ होता है। वह अर्थ किसी आकार को प्रकट करता है। वह आकार ही रचना के मूल में होता है। अतः शब्द ही रचयिता है। शब्द भौतिक जगत् में आकार है तो मानसिक जगत् में भाव भी है। मन में जैसा भाव होता है वही शब्दों के माध्यम से प्रकट किया जा सकता है अतः भाव ही होता है जो भौतिक जगत् की वास्तविकता में परिवर्तित हो जाता है। अतः शब्द ही रचयिता हुआ। सृष्टि की रचना ईश्वर का कार्य है। अतः जब शब्द-रचना करने में समर्थ है तो इसीलिए शब्द को भी ब्रह्म कहा गया है। संसार की रचना अथवा विस्तार के लिए कर्म अनिवार्य है और

श्री सीताराम गुप्ता

मनुष्य कर्म अपने विचारों के अनुरूप ही करता है। विचार पहले मन में भाव के रूप में उत्पन्न होते हैं और बाद में शब्दों का रूप ले लेते हैं। इसके बाद ही कर्म का प्रारंभ होता है जिससे सृष्टि का निर्माण एवं विस्तार होता है। वास्तव में यह संपूर्ण सृष्टि इस सृष्टि के वासियों की सामूहिक सोच का ही परिणाम है।

शब्द को ब्रह्म कहने का तात्पर्य यही है कि हर सृजन क मूल में शब्द ही होता है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा हैं, पालक विष्णु हैं तथा संहारक शिव हैं। शब्द एक ऐसी सत्ता है जो तीनों का कार्य करने में सक्षम है। शब्द में असीम शक्ति है। शब्द भी अनेक प्रकार के हैं। शब्दों के भेद के कारण ही ये संपूर्ण संसार अपना हो सकता है या पराया हो जाता है, जीवन सुखमय हो सकता है या दुखमय हो सकता है। अच्छे शब्द अच्छा प्रभाव डालते हैं तो बुरे शब्द बुरा प्रभाव डालते हैं। सात्त्विक भावों अथवा शब्दों से सौहार्द में वृद्धि होती है, तो तामसिक भावों अथवा शब्दों से ही वैमनस्य उत्पन्न होता है। इस त्रिगुणात्मक संसार की संपूर्ण संरचना के मूल में केवल सकारात्मक अथवा नकारात्मक भाव अथवा शब्द ही हैं। शब्द ही ब्रह्म अथवा सर्जक हैं तो शब्दों के सही प्रयोग द्वारा संपूर्ण सृष्टि में संतुलन बनाया जा सकता है। शब्दों के सही चयन के द्वारा आत्मघाती अथवा विनाशकारी सृजन को रोका जा सकता है। जो इतनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकता है वह सचमुच ब्रह्म ही है। शब्द ब्रह्म ही नहीं उससे भी कहीं अधिक है। अपेक्षित है तो उसकी शक्तियों का सदुपयोग। जिसे भी शब्दब्रह्म का ज्ञान हो गया वही सृजन की कला में समृद्ध व निष्णात हो गया। वह स्वयं

ए डी-१०६-सी, पीतमपुरा, दिल्ली-११००३४ फोन न. ०९५५५६२२३२३

न अतिथिः पूजितो यद् हि ध्यायते मनसा शुभम्।
न तत् क्रतुशतेनापि तुल्यमाहुः मनीषिणः।।

महा.६; दानपर्व २.९२

शास्त्रों का कथन है कि किसी भी गृहस्थी को घर में अचानक आए हुए अतिथि को देवता समझना चाहिए तथा उसकी पूजा देवता समझकर करनी चाहिए। क्योंकि घर में आए हुए अतिथि का अच्छी प्रकार से सत्कार किए जाने के बाद जब वह प्रसन्न होता है तो वह प्रसन्न हुए अन्तःकरण से गृहस्थी को शुभाशीर्वाद देता है।

वैदिक देवता सोम

–डॉ. उमा रानी

देव शब्द का मुख्यार्थ है प्रकाशित होने वाला–दीव्यतीति देवः। महाभारत में भगवान् वेदव्यास ने देव शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है– प्रकाशलक्षणा देवाः[1]। देव शब्द से तल् प्रत्यय लगाने पर देवता शब्द सिद्ध होता है। महर्षि यास्क ने देवता शब्द का निर्वचन किया है–देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, द्युस्थानो भवतीति वा यो देवः सा देवता:[2]। अर्थात् पदार्थों को देने वाले, प्रकाशित होने अथवा करने वाले को देव कहा जाता है अथवा द्युलोक में रहने के कारण भी देव कहा जा सकता है, देव ही देवता कहलाता है। अनेक विद्वान् विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों को देवता कहते हैं कुछ आलोचकों ने अग्नि आदि देवतावाचक शब्दों का अर्थ परमेश्वर किया है। वैदिक संहिताओं में अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम तथा रुद्र आदि विविध देवताओं का विवेचन अनेक मन्त्रों में देखने को मिलता है। इन वैदिक देवताओं में से सोम ऋग्वेद का एक प्रमुख देवता है जिसकी स्तुति १२० सूक्तों में की गई है। ऋग्वेद का सम्पूर्ण नवम मण्डल सोम की स्तुति से भरा पड़ा है। सूक्तों की संख्या के आधार पर अग्नि के पश्चात् सोम का स्थान आता है। सोम ऐसा वैदिक शब्द है जिसके सम्यक् अर्थबोध विना वेदार्थ समझना कठिन है। वेदार्थ को जाने विना देवताओं का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। सोम के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होने पर ही वेदमंत्रों का तात्पर्यार्थ भली-भांति समझा जा सकता है। सामवेद के ११९ मन्त्रों वाले पावमान पर्व या काण्ड का देवता पवमान सोम है जो पवित्रता, समरसता, शान्ति एवं आनन्द का प्रतीक है केवल कल्पना कर लेने मात्र से सोम को सुरा मान लेने से वेदार्थ करना सम्भव नहीं है। सोम शब्द का प्रचलित अर्थ औषधि अथवा चन्द्रमा है। षुञ्-अभिषवे धातु से निष्पन्न सोम शब्द का अर्थ है-निचोड़ना। औषधि को सोम कहने का कारण है-निचोड़कर इसका रस निकाला जाता है। षू-'प्रसवैश्वर्ययोः' अर्थात् जो उत्पन्न करता है, जो ऐश्वर्य का हेतु होता है तथा जो निचोड़ा जाता है, वह सोम है। उपर्युक्त धातुओं के आधार पर विभिन्न विद्वानों द्वारा सोम शब्द के अनेक अर्थ प्रस्तुत किये गये हैं। महर्षि दयानन्द के अनुसार सोम शब्द के विभिन्न अर्थ इस प्रकार हैं-

१ सुवति चराचरं जगद् यः स जगदीश्वरः-जो चराचर जगत् का उत्पादक है वह जगदीश्वर[3]।

---

१. महाभारत, आश्वमेधिक पर्व४३/२१ २ निरुक्तम् ७.४.१५ ३ यजुर्वेद, ३.५६

२ सूयन्ते रसा यस्मात् स सोमौषधिराजः[४]– जिससे रस निकाले जाते हैं, वह औषधिराज सोम।

३ सोमविद्यासम्पादको विद्वान्[५]–सोमविद्या का सम्पादक विद्वान्।

४ शुभकर्मगुणेषु प्रेरकः परमेश्वरो विद्वान् वा[६]– शुभकर्मों एवं गुणों के प्रेरक परमेश्वर या विद्वान्।

५ सकलैश्वर्यपठितः सौम्यगुणसम्पन्नः राजा[७]– सकल ऐश्वर्यों से समृद्ध सौम्यगुण सम्पन्न राजा।

६ बहुसुखप्रसावकः वायुः[८]–बहुत सुख का उत्पादक वायु।

७ चन्द्रः[९]–चन्द्रमा

८ सेनाप्रेरकः– सेनाध्यक्ष[१०]–सेनाप्रेरक सेनाध्यक्ष।

९ सौम्यगुणसम्पन्नः सभ्यो जनः[११]–सौम्यगुण-सम्पन्न सभ्यजन।

सामवेद के पवमान काण्ड में पारमार्थिक दृष्टि से सोमशब्द का मुख्यार्थ परमात्मा है। उस सर्वोत्पादक परमात्मा द्वारा ही ब्रह्माण्ड के सूर्य, चन्द्र, वायु, विद्युतादि और शरीर पिण्ड के प्राण, बुद्धि, वाक्, चक्षु तथा श्रोत्रादि रचे गये हैं– सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः[१२]। सोम का चन्द्र अर्थ भी होता है– यच्छुष्कम् तदाग्नेयम् यदार्द्रम् तत् सोम्यम्[१३]। अतः अधिदेव में यह सोम जलों का वह सूक्ष्मतम भाग है जो सूर्यकिरणों द्वारा सूर्य तक पहुँचता है या चन्द्रप्रभा द्वारा औषधियों में पहुँचता है– अप्सु में सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजाः[१४]।

सोम का अर्थ वेदवेत्ता, सत्यनिष्ठ नीरक्षीर विवेकी विद्वान् भी होता है[१५]।

वैदिक साहित्य में सोम का औषधियों के साथ विशेष सम्बन्ध बताया गया है-सौम्या औषधयः[१६], सोम ओषधीनामधिराजः[१७], सोमो वै राजौषधीनाम्[१८], ओषधो हि सोमो राजा[१९], या ओषधीः सोमराज्ञी[२०], ओषधयः संवदन्ते सोमेन सह राज्ञा[२१]। वेद में देवों का भाग जल, औषधियों का रस घृत और सोम है[२२]।

सोम का अर्थ न्यायाधीश भी है। ऋग्वेद और अथर्ववेद के सूक्तों में इन्द्र और सोम से राक्षसों को दण्डित करके प्रजाजनों की रक्षा हेतु प्रार्थना है। किस अपराधी को क्या दण्ड मिलना चाहिए यह निश्चय सोम ही करता है। सोम द्वारा अपराध और दण्ड का निर्णय दिए जाने पर अपराधी सम्राट् इन्द्र के बन्धन में पड़ जाते हैं मन्त्रों के वर्णन में स्पष्ट झलकता है कि न्याय का काम सोम और

४ वही, ४.३६ ५ ऋग्वेद, १.११.३ ६ यजुर्वेद, ७.२१, ८.५० ७ ऋग्वेद, १.९१.५
८ ऋग्वेद, ३.६२.१४ ९ यजुर्वेद, १७.४० १० ऋग्वेद, ४.१७.६
११ सामवेद पावमानपर्व मन्त्र सं. ५२७ १२ शतपथ, १.६, ३.२३ १३ ऋग्वेद, १.२३.२०, अथर्ववेद १.५.६
१४ यजुर्वेद, १०.१८, ऋग्वेद, १०.८५.३ १५ शतपथ ब्राह्मण, १२.१.१.२ १६ गोपथब्राह्मण, १.१७
१७ तैत्तिरीय ब्राह्मण, ३.९.१७.१ १८ ऐतरेय ब्राह्मण, ३.४० १९ ऋग्वेद, १०.९७ २० वही, १०.९७.२२
२१ अथर्ववेद, ५.४.६ २२ वही, १४.१.२

शासक का काम इन्द्र का है:- निम्नलिखित मन्त्रों में यह भावना परिलक्षित होती है-
सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय[23]- ये पाकशंसं विहरन्त[24], न वा सोमो वृजिनं हिनोति[25]।

वेदों में सोम शब्द परमात्मा के अर्थ में अत्यधिक प्रयुक्त हुआ है कुछ मन्त्र इस प्रकार है- सोम: पवते जनिता मतीनाम्[26]-
सोम पवित्र करता है, द्युलोक, पृथिवीलोक का उत्पादक है।
पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते--[27]। सोम ब्रह्म अर्थात् वेद का स्वामी है, सोमयुतरुद्रं हुवेम[28] सोमम्- शीतलता और शान्ति के भण्डार सौम्य स्वरूप भगवान् को अपनी रक्षार्थ पुकारते हैं।
सोम रारन्धि नो[29]-हे सोम! अर्थात् हे सुख-शान्ति के स्रोत प्रभो! स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम-धारया[30]। अर्थात् यही वह स्वादिष्ट, आनन्द-प्रद सोमधारा है, जिसे पीकर आत्मा तृप्त होता है।
मानवजीवन की सार्थकता सोमपान से ही सम्भव है-

अपाम सोमम् अमृता अभूम[31]-हमने सोमपान किया है, हम अमृतमय हो गए हैं। हमने ज्योति प्राप्त कर ली है, हमने दिव्यताएँ प्राप्त कर ली हैं। जो परमात्मा के सोमरस का पान कर लेता है, वह अमरत्व को पा लेता है-

इन्द्राय पवते मद: सोमो मरुत्वते सुत:[32]।

मुण्डकोपनिषद् में सृष्टि के पदार्थों की उत्पत्ति बतलाते हुए सोम रूप चन्द्रमा की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है-

सोमो यत्र पवते यत्र सूर्य:[33]-संसार के दिव्य पदार्थ, जिस कारण ऊर्जाशक्ति को प्राप्त करके अस्तित्ववान् रहते हैं, वही ऊर्जाशक्ति सोम है, जिसे बृहदारण्यक ने बीजतत्त्व कहा है-एष सोमो राजा तद्देवानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति[34]।

सृष्टि की उत्पतिविषयक सोम शब्द का प्रयोग कई स्थलों पर प्राप्त होता है। एक वैज्ञानिक तथ्य है कि प्रकाश और आर्द्रता में जीवाणुओं की उत्पत्ति होती है। बृहदारण्यक में इसी उत्पत्तिमूलक आर्द्रता को सोम कहा है। जैसे यज्ञ में डाली हुई आहूतियों से बादल बनते हैं बादल से पुन: वर्षा होती है। इसी जलीय वाष्प को सोम शब्द द्वारा उल्लिखित किया है। इस उपर्युक्त वर्णन से वैदिक साहित्य में सोम के विभिन्न अर्थ प्राप्त होते हैं केवल औषधीवाचक सोमलता नशीली होती थी। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में

२३ अथर्ववेद,८.४.१२, ऋग्वेद,७.१०४.१२
२४ अथर्ववेद,८.४.९, ऋग्वेद,७.१०४.९
२५ वही,८.४.१३, वही,७.१०४.१३
२६ ऋग्वेद,९.९७.५
२७ वही,९.८३.१
२८ वही,९.८३.१
२९ वही,७.४१.१
३० वही,१.९१.१३
३१ वही,९.१.१, सामवेद,४३८,६८९
३२ मुण्डकोपनिषद्,६.२
३३ बृहदारण्यकोपनिषद्
३४ वही,१.४.६

मदिन्तमः मद्यः, मदच्युतः, मधुमन्तमः, देवमादनः आदि विशेषण सोम के लिए प्रयुक्त हुए हैं। शतपथ ब्राह्मण में सोम को सत्यश्री तथा ज्योतिस्वरूप कहा है। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में सोम के लिए पवित्रता के द्योतक विशेषणों का भी प्रयोग हुआ है जैसे शुचिजातः, शुचिः, पुनानः आदि।

इस प्रकार सोम का प्रयोग वैदिक साहित्य में केवल औषधियों की लता के अर्थ में ही नहीं अपितु विभिन्नार्थ में हुआ है। शब्दस्थ प्रकृति- प्रत्यय का विवेचन करने के उपरान्त सोम शब्द परमेश्वर ओषधिवाचक विद्वान्, राजा, वायु चन्द्रमा, सेनाध्यक्ष, सभ्यजन, सूर्य, विद्युत्, वीर्यशक्ति, न्यायाधीश, पितृलोक, इन्द्र, शनि, दधि, पय, क्षात्रशक्ति, यश, अन्न, प्राण, रस, ऐश्वर्यवाची, गृहाश्रम, रसविशेष, वैद्य, जल, विद्वान्, सभाध्यक्ष, शिष्य, अध्यापक, उपदेशक, यजमान इत्यादि विभिन्नार्थों का वाचक होता है।

अतः उपर्युक्त अर्थों का वाचक होने के पश्चात् उसे केवल मद्य, आदि मादक द्रव्यों का वाचक ही नहीं मानना चाहिए। वेदों के भाष्यकार सायण, उव्वट, महीधर आदि आचार्यों ने सोम का अर्थ सर्वत्र लता, रस या सुरा विशेष ही किया है।

वस्तुतः सोम एक ऐसा तत्त्व है जो सृष्टि को सुन्दर सुखमय और मृदु बनाता है, जो पदार्थों को आर्द्र और आरोग्यवर्धक बनाता है। इसीलिए सोम को रस कहा गया है। उपनिषद् और वेद दोनों ऐसा वर्णन करते हैं-

रसौ वे सः। रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।। परमात्मा रस से परिपूर्ण है, उसमें कोई न्यूनता नहीं है, वही शक्ति का स्रोत, ज्ञानवान्, प्राणों का भी प्राण और अत्यन्त सुस्वादु है जिसे पा कर मोक्ष प्राप्ति होती है- अपाम सोमम् अमृता अभूम। हम सोमम् का पान करें और अमर हो जीवें। इस प्रकार सोम देवता का वर्णन लगभग१२५० वेदमंत्रों में वर्णित है। सम्पूर्ण ऐश्वर्य का कारण सोम को कहा गया है। अतः इस प्रकार प्रकरणशः वैदिक देवता सोम की संगति लगाई जानी चाहिए। सोम ईश्वर और जीवात्मावाची, चन्द्रमा का द्योतक, जलीय वाष्प व व्यक्तिबोधक है। इनका प्रसंगानुकूल विनियोग अत्यन्त आवश्यक है।

-असिस्टैंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यलय, ऊना (हिमाचल)।

कल्पवृक्ष (प्राचीनता और वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता)

–डॉ. ऋषभ भारद्वाज

व्युत्पत्ति:-

कल्पवृक्ष वस्तुत: कल्पना अर्थ वाली 'कृप्' धातु में अच् या घञ् प्रत्यय के योग से बनता है, जिसका अर्थ कामना-पूर्ति होता है[1]। वृक्ष शब्द ढकना अर्थ वाली 'व्रश्च' धातु में क्स् प्रत्यय से वृक्ष: और वृक्ष में कन् प्रत्यय के योग से वृक्षक: शब्द निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ पेड़ होता है[2]। इस प्रकार से दोनों शब्दों का मिला-जुला अर्थ होता है-जो हमारी इच्छानुरूप फल देने वाले वृक्ष है या कामना पूरी करने वाला वृक्ष है। पुराणों के अनुसार स्वर्ग का एक वृक्ष, जिसकी छाया में पहुँचते ही सभी मन:कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, उसे कल्पवृक्ष कहते हैं[3]।

नामकरण:-

वैदिक सनातनधर्म और भारतीय वाङ्मय में कल्पवृक्ष[4] के कल्पशाखी, कल्पद्रुम, कल्पतरू, कल्पपादप, खरपत्रक आदि नाम प्रचलित रहे हैं। कल्प[5] शब्द हमारे वाङ्मय में अन्य अर्थों में भी प्रयुक्त होता है, जैसे मांगलिक शुभकृत्य, व्यवहार में लाने योग्य-विहित नियम, प्रस्ताव, कार्य करने की रीति, सृष्टि का अंत/प्रलय[6] रोगी की चिकित्सा, वेदांगों में एक[7], संज्ञा और विशेषणों में जुड़कर शब्द बनाने में लगभग, बराबर, मृतकल्प, प्रतिपन्न, कल्प के अन्त तक ठहरने वाला, वस्तुओं का पुनर्नवीनीकरण, सृष्टि का नाश, अत्यंत उदारपुण्य, आदि होते हैं[8]। उक्त कल्पवृक्ष के नाम एवं अर्थों को लाक्षणिक अर्थ में देखा जाये तो स्पष्ट होता है, ऐसा वृक्ष, जो दूसरों की उदारतापूर्वक सहायता करता हो, बहुत बड़ा दानी हो, सदैव दूसरे के कल्याण में लगा रहता हो, जो अधिक ऊँचा घेरदार और दीर्घजीवी हो[9]।

'कल्पवृक्ष' को आंग्ल भाषा में मन्की-ब्रेड-ट्री (Monkey Bread tree) और लेटिन भाषा में एडेन्सोनिया डिजिटेटा लिन (Adansonia digitata linn)[10] कहते हैं। वनस्पति विज्ञान में निकटेन्थस आरवोर ट्रिसटिस भी कहा जाता है। अफ्रीका की लोक-भाषा में बायोबेव (Baobab) कहा जाता है। वनस्पति विज्ञान में एडेन्सोनिया

१ संस्कृत-हिन्दी-शब्दकोष, वामन शिवराम आप्टे, पृ-२८१

२ संस्कृत-हिन्दी-शब्दकोष, वामन शिवराम आप्टे, पृ-९९५

३ हिन्दी (मानक) साहित्यकोश, प्रथम खण्ड, पृ. ४२५

4 The tree Indian's paradise a tree which yields anything desired (mega dictionary, Edited by pt. Ravidutta Shastri p.p.-149)

५ आधुनिक पुराशास्त्र और भू-शास्त्र के क्षेत्रों में करोड़ों अरबों वर्षों का वह विशिष्ट काल विभाग जो कई युगों में विभक्त रहता है, जिसमें पृथ्वी की कुछ स्वतंत्र प्रकार की विकासात्मक स्थितियां होती हैं। जैसे कल्प, उत्तरकल्प, मध्य-कल्प, नवकल्प आदि।

६ हिन्दू पंचांगों के अनुसार काल/समय का बहुत बड़ा विभाग जो हजार महायुगों अर्थात् ४ अरब ३२ करोड़ मानव वर्षों का कहा गया है। प्रत्येक कल्प ब्रह्मा का एक दिन माना जाता है और ऐसे ३६० दिनों का ब्रह्म का एक वर्ष होता है। अब तक ब्रह्मा के ऐसे ५० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं और अभी ५१वें वर्ष के पहले वर्ष के पहले महीने का पहला दिन चल रहा है, जिसका नाम श्वेत बाराह कल्प है।

७ कल्प-वेदांगों में एक जिसमें यज्ञों का विधान किया गया है।

८ संस्कृत-हिन्दी-शब्दकोष, वामन शिवराम आप्टे, पृ. २८१

९ हिन्दी (मानक शब्दकोश) प्रथम खण्ड, पृ.-४४०

१० Indian Medicinal plants-K. R. Kritikar & B.D. Basu P.P-351

नाम अधिक प्रचलित है। यह नाम अमेरिका के प्रो. एडेन्सन के नाम पर रखा गया है। प्रो एडेन्सन वनस्पति विज्ञान के प्रथम विद्वान् हैं, जिन्होंने कल्पवृक्ष पर विशेष शोध किया है और मेडिसिन के क्षेत्र में इसकी प्रायोगिकता पर जोर दिया है।

वस्तुत: कल्पवृक्ष यथा नाम तथा गुण वाला है। इसके जितने भी नाम प्रचलित हैं, उनका अपना अपना महत्त्व है और उनका अलग-अलग क्षेत्रों में उपयोग भी होता है। सम्प्रति भारतवर्ष में इसका नाम 'कल्पवृक्ष' ही अधिक प्रचलित है। जो लोगों को मनोवांछित फल देने वाला है। धार्मिक क्षेत्रों में इसकी पूजा देव-रूप में होती है

प्राचीनता:-

हमारा भारतवर्ष विशाल परम्पराओं का देश है, यहाँ प्रत्येक धर्म, नीति, रीति, मान्यता, पूजा, सिद्धांत और नियमों के पीछे परम्परायें रहीं है। इसी कारण भारतवर्ष को परंपराओं का देश कहा जाता है। परम्पराओं में पूजा की परम्परा विशेष रही है। वैदिक सनातन धर्म में देवी, देवता, भगवान्, पशु, जानवर और वृक्षों की पूजा का विधान है। जब पेड़ों की पूजा की बात आती है तो अन्य धर्मों के लोग आक्षेप करते हैं कि यह कैसा धर्म है? जिसमें पेड़ों, पशु और जानवरों की पूजा की जाती है। निश्चित रूप से उन्होंने हमारे धर्म के रहस्य को नहीं समझा है। हमारा सनातन धर्म कितना वैज्ञानिक और प्रामाणिक है, यह वे लोग नहीं जानते हैं। वे क्या जाने कि धर्मो रक्षति रक्षित: सूत्र हमारे कल्याण के लिए ही है। वैसे ही पेड़ों और जानवरों की पूजा और रक्षा हमारे कल्याण के लिए है।

कल्पवृक्ष के संदर्भ में हमारे यहाँ मान्यता रही है कि पारिजात और कल्पवृक्ष स्वर्ग के वृक्ष हैं। इसे सत्यभामा की इच्छा को पूरा करने के लिए कृष्ण ने स्वर्ग से कल्पवृक्ष लाकर अपने भवन के सामने खड़ा कर दिया था। कार्तिक मास के माहात्म्य की पुस्तक के प्रथम अध्याय में कल्पवृक्ष की एक कथा मिलती है-सूत जी महाराज नैमिषारण्य तीर्थ में अट्ठासी हजार शौनकादिक ऋषियों को कार्तिक माह का माहात्म्य सुनाते हैं। सूतजी महाराज कहते हैं श्री कृष्ण से आज्ञा लेकर मुनि नारद भ्रमणार्थ चले गये। तब सत्यभामा प्रसन्न होकर लक्ष्मीपति से कहने लगी हे नाथ! मैं धन्य हुई। मेरा जीवन सफल हो गया। मेरे जन्मदाता भी धन्य हैं, जिन्होंने मुझ जैसी त्रैलोक्य-सुन्दरी को जन्म दिया जो आपकी परम प्यारी पत्नी बनी। मैंने वह कल्पवृक्ष आपके साथ नारद जी को विधिपूर्वक दान में दे दिया। परंतु वही कल्पवृक्ष मेरे घर लहराया करता है, जिस बात को मृत्युलोक में कोई स्त्री नहीं जानती है।

सत्यभामा ने पुन: श्री कृष्ण से कहा हे त्रिलोकी नाथ! हे मधुसूदन! मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ। भगवान् ने कहा तुम अधिकार से पूछ सकती हो। तब सत्यभामा ने कहा मैं कार्तिक मास के माहात्म्य को सुनना चाहती हूँ, जिसे सुनकर मेरा और सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याण हो तथा जिसके व्रत करने से मैं कल्पपर्यन्त भी आप से दूर न हो सकूँ। भगवान् सत्यभामा को कल्पवृक्ष के नीचे ले जाते हैं और कहते हैं, हे सत्यभामा! तुम मुझे सोलह हजार रानियों में अत्यधिक स्नेह भाजन हो, प्राणों के समान प्यारी हो। तुम्हारी इच्छा ही पूरा करने के लिए मैंने, इन्द्रसहित सभी देवताओं से विरोध किया। मैं जब तुम्हारे लिए गरुड़ पर सवार होकर कल्पवृक्ष लेने के लिए स्वर्ग गया और इन्द्र से मांगा तब इन्द्र ने मना कर दिया। गरुड़ ने मेरा अपमान जानकर इन्द्र से घोर युद्ध किया, जिसमें गरुड़ की चोंच और पंख कट

गये। तदनन्तर मैंने अपनी कृपा से गरुड़ के सभी अंग ठीक कर दिये और अपनी दिव्यता से कल्पवृक्ष को तुम्हारे भवन के आँगन में खड़ा कर दिया[११]। इस कथा से यह स्वत: स्पष्ट होता है कि कल्पवृक्ष को पृथ्वी पर श्रीकृष्ण लाये थे। इस कथा का कोई प्रमाण नहीं है, जिस कारण हम इसे पूर्णरूपेण स्वीकार नहीं कर सकते हैं।

ऐतिहासिक स्रोत:-

विश्व स्तर जब हम कल्पवृक्ष का अन्वेषण करते हैं तो भारत के अतिरिक्त आस्ट्रेलिया और अफ्रीका में भी यह देखने को मिलता है। इतिहासकार यह बताते हैं कि लाखों वर्ष पहले भारत उपमहाद्वीप अफ्रीका और आस्ट्रेलिया एक साथ जुड़े हुये थे। कालान्तर में समुद्र में (Continental drift) कॉन्टीनेन्टल ड्रिफ्ट होने से तीनों क्षेत्र अलग-अलग हो गये। इस इतिहास की पुष्टि यह वृक्ष ही करता है, क्योंकि इन तीनों द्वीपों पर यह आज भी पाया जाता है। अफ्रीका के छोटे-छोटे देशों सहित कुल १३ देशों में प्राप्त होता है। इन तीनों द्वीपों में होने का कारण गर्म जलवायु भी हो सकता है, क्योंकि कल्पवृक्ष गर्म जलवायु वाला वृक्ष है।

भारत वर्ष के इतिहास में कल्पवृक्ष का सबसे प्राचीन उल्लेख अथर्ववेद में प्राप्त होता है। इसमें कल्पवृक्ष औषधियों के रूप में वर्णित है[१२]। दूसरा लिखित प्रमाण महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले में स्थित अजंता एलोरा गुफाओं के भित्ति-चित्रों पर मिलता है। भित्ति-चित्रों मे एक विशाल कल्पवृक्ष चित्रित है, जिसके चारों ओर बन्दरों के चित्र भी अंकित हैं। हो सकता है कि इसी आधार पर अंग्रेजी विद्वानों ने इसका नाम ''मन्की ब्रेड ट्री' रख हो। इतिहासकार मानते हैं कि कल्पवृक्ष के फलों को बंदर बहुत खाते हैं। इसका आकार बहुत बड़ा होता है, जिससे बंदर इस पर सुख से फल खाते हुए निवास करते हों। जब अजंता-एलोरा की गुफाएं चित्रित की गई होंगी, शायद उस समय बन्दरों का व्यवहार कल्पवृक्ष पर ऐसा देखा गया होगा।

प्राचीन भारतीय इतिहासकार वासुदेव शरण अग्रवाल कल्पवृक्ष के संदर्भ में लिखते हैं- कल्पवृक्ष का जन्म समुद्र-मंथन से हुआ। यह इच्छाओं की पूर्ति करने वाला वृक्ष मन का प्रतीक है। कल्प का अर्थ चिन्तन विचार या मन है। कल्पवृक्ष के नीचे मनुष्य जो सोचता है, वह उसे मिलता है। कल्पवृक्ष स्वर्ग का वृक्ष था। उसकी शाखाओं और पल्लवों पर देवों का वास था। इस वृक्ष की चार दिशाओं में चार शाखाएँ मानी जाती है इससे इसका संबंध स्वस्तिक से भी ज्ञात होता है। सदा यौवन का उपभोग करने वाले स्त्री-पुरुषों के मिथुन या जुगलिये कल्पवृक्ष से ही जन्म लेते हैं। इसी दृष्टि से घर भी कल्पवृक्ष का रूप है जिसमें स्त्री और पुरुष विवाह कर माता-पिता बनते हैं। उत्तरकुरू के कल्पवृक्षों का वर्णन रामायण, महाभारत, मालीवाणिज, जातक, पुराण, जैन ग्रन्थ और काव्यों आदि में प्राप्त होता है। भरहुत, भाजा, साँची आदि स्थानों की कला में कल्पवृक्ष और कल्पलताओं का अंकन बहुश: मिलता है। गुफा और मंदिरों के द्वार-स्तम्भों पर उत्कीर्ण मिथुन मूर्तियों का अभिप्राय वही हो सकता है। जैनग्रन्थों में दस प्रकार के कल्पवृक्ष कहे गए हैं (दे. अध्याय-८, भरहुत स्तूप)। इसी अभिप्राय का रूप लहराती हुई कल्पलता थी, जिसके मोड़ों में से भाँति-भाँति के वस्त्र और आभूषण जन्म लेते हुए दिखाए गये हैं। इसी से संबंधित एक अवान्तर अभिप्राय नारीलता

११ कार्तिक माहात्म्य-पं. हरस्वरूप शास्त्री, आनंद प्रकाशन दिल्ली, पृ.१-३

१२ अथर्ववेद-१०/०८/४३

या काम-लता था, जो गढ़वा के मंदिर के स्तम्भों पर मिला है[१३]।

कल्पवृक्ष का भारत में सबसे प्राचीन प्रामाणिक चित्र कोलकाता में उत्कीर्ण 'इंडियन म्यूजियम कलकत्ता' में प्राप्त होता हे, जो शिलालेख पर उत्कीर्ण है। शिलालेख की छायाप्रति ही इसके समय की पुष्टि करती है[१४]।

कल्पवृक्ष की वर्तमान स्थितिः-

आज भारतवर्ष में कल्पवृक्ष की देव-रूप में पूजा की जाती है-उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कल्पवृक्ष स्वर्ग का वृक्ष था। भारतीय ज्ञान-विज्ञान के मूलाधार वेदों में अथर्ववेद चौथा वेद है, जिसमें अनेक नये सिद्धांतों पर चर्चा की गयी है। अथर्ववेद 'कल्पवृक्ष' की चर्चा १० महत्त्वपूर्ण वनस्पतियों में करता है, किन्तु इसकी पूजा-अर्चना का कोई विधान नहीं किया गया है। कल्पवृक्ष की पूजा-विधान का उल्लेख हमें पुराणों में अवश्य मिलता है, क्योंकि पुराण आम, आँवला, पीपल, बरगद, तुलसी जैसी मानवोपयोगी वनस्पतियों का वर्णन देवरूप में करते हैं, अतः हम कल्पवृक्ष को पुराण काल का वृक्ष कह सकते हैं। पुराणकाल से ही कल्पवृक्ष की पूजा मृत्युलोक पर प्रचलित हुई होगी, ऐसा मेरा निजी मत है। पुराणों में विशेष पूजनीय श्रीमद्भागवत महापुराण इस बात की पुष्टि करता है। भागवत के माहात्म्य के ६ वें अध्याय के ८० वें श्लोक में कल्पवृक्ष की चर्चा काव्यमय रूप में (उपमा के रूप में) की गई है-

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं,
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत् भागवतं रसमालयं,
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः।।[१५]

पूजा कर्मकाण्ड की परंपरा में सुरक्षित एवं संवर्धित कल्पवृक्ष आज भारतवर्ष के विभिन्न अंचलों में पाया जाता है और किसी न किसी प्रकार से पूजा जाता है। राजस्थान के जैसलमेर और अजमेर में इसके बहुत विशाल वृक्ष हैं। गुजरात के समुद्री किनारे गांवों में पाया जाता है। समुद्र के किनारे जिग्रो गाँव है, जहाँ अफ्रीकन जाति के लोग हैं इन लोगों के शरीर की बनावट अफ्रीकन लोगों जैसी होती है। यह लोग कल्पवृक्ष के पेड़ों को सुरक्षित रखते हैं। उत्तरप्रदेश के बाराबंकी जिले के बरोलिया ग्राम में एक विशाल कल्पवृक्ष है, जिसके नीचे घना अंधकार रहता है। इसका व्यास लगभग २ एकड़ भूमि है। बताया जाता है कि यह कल्पवृक्ष महाभारत काल में पाण्डुपुत्र अर्जुन ने लगाया था। यह क्षेत्रीय लोगों का मानना है कोई लिखित प्रमाण नहीं है[१६]।

भारत सरकार ने सन् १९९५ई. में इसी कल्पवृक्ष के चित्र के पाँच, छै रूपये के डाक टिकिट

---

१३ भारतीय कला-डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ.-७२

१४ कल्पवृक्ष का यह चित्र राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली की वेबसाइट से लिया गया है।

१५ श्रीमद्भागवत महापुराण-माहात्म्य अ. ६/८०

१६ बाराबंकी (उ.प्र.) के कल्प वृक्ष की जानकारी डॉ. अजय शंकर मिश्रा एवं श्रीमती मिश्रा द्वारा प्राप्त हुई।

जारी किये थे, जिसमें चित्र कल्पवृक्ष का था और नाम पारिजात वृक्ष का था। सरकार की इस त्रुटि को दूर करने के लिए वनस्पति विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर के आचार्य डॉ. अजय शंकर मिश्रा ने गृह मंत्रालय को पत्र लिखा था। कुछ समय बाद यह डाक टिकिट ही बंद हो गये। मध्यप्रदेश के भी अनेक स्थानों पर कल्पवृक्ष है। इन्दौर के पास माण्डू नाम का एक पर्यटन स्थल है। जहाँ बहुत प्राचीन कल्पवृक्ष है। टीकमगढ़ के महेन्द्रबाग में एक विशाल कल्पवृक्ष है। भोपाल के राजभवन का बाग भी कल्पवृक्ष से सुशोभित है। राजभवन में डॉ. अजय मिश्र ने कुछ वर्ष पहले ही इसकी स्थापना की थी।

ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भारत तो क्या सम्पूर्ण विश्व में विख्यात स्वनामधन्य सागर शहर भला कैसे कल्पवृक्ष जैसे महत्त्वपूर्ण/ पूजनीय वृक्ष के गौरव से वंचित रह सकता है? कदापि नहीं। सागर शहर का जैसा नाम है, वैसा ही काम है यह 'यथा नाम तथा गुण' की कहावत चरितार्थ करता है। वनस्पतियों के क्षेत्र में सागर प्राचीन समय से जाना जाता रहा है। यहाँ पारिजात, शमी, कदम्ब, बरगद, पीपल, इच्छा पीपल, और कल्पवृक्ष के अत्यंत प्राचीन वृक्ष हैं। शहर के न्यायालय (कचहरी) परिसर में लगा हुआ कल्पवृक्ष लगभग ६०० साल पुराना है। यह तो अपनी प्राचीनता, दिव्यता, विशालता और दाता के रूप में लोगों को मनोवांछित फल देता हुआ आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है।

सागर का यह कल्पवृक्ष सन् १९९७ ई. में प्रकाश में आया। सन् १९९७ में प्रधानमंत्री देवगौड़ा के कार्यकाल में काँची कामकोटी के शंकराचार्य श्री जिनेन्द्र सरस्वती जी अपने युवराज विजेन्द्र सरस्वती के साथ राष्ट्रीय प्रवास पर निकले थे। बात १ मार्च १९९७ की रात्रि १० बजे की थी जब सागर शहर में श्री जिनेन्द्र सरस्वती जी का पदार्पण हुआ। वे श्री देव वृन्दावन बाग मठ सागर के सांगवेद विद्यालय के भवन में ठहरे थे। मठ के तत्कालीन महन्त श्री श्याम बिहारी दास जी ने शङ्कराचार्य-परम्परानुसार बड़ी ही भक्ति-भाव से सेवा-सुश्रूषा की। दूसरे दिन वृन्दावनबाग मंदिर के परिसर में विशाल धर्मसभा का आयोजन हुआ। धर्मसभा में श्री शङ्कराचार्य के दर्शनार्थ सागर शहर का विशाल जनसैलाव पहुँचा। राज्य-अतिथि के रूप में सागर शहर के प्रशासन ने आतिथ्य किया और पूरी सुरक्षा-व्यवस्था की। श्री शङ्कराचार्य जी अहिन्दी भाषी हैं, इस कारण उनसे अधिक लोग वार्तालाप नहीं कर पाये। उस समय सागर विश्वविद्यालय के आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी, स्व. पं. प्रेमनारायण द्विवेदी, डॉ. महेश अग्निहोत्री ने संस्कृत भाषा में धारा-प्रवाह वार्तालाप किया। चित्र-

श्री श्री १०८ श्री जिनेन्द्र सरस्वती जी का पूजन करते हुए वृन्दावन बाग मठ के महंत श्री श्याम बिहारी दास जी एवं जिलाधीश स्मिता गाटे, पं. शम्भुदयाल पाण्डेय, पं. जे. पी. पाण्डेय एवं अन्य भक्तगण[17]।

---

१७ यह चित्र श्री देव वृन्दावन बाग मठ सागर के महन्त श्री श्री १०८ महन्त श्री श्याम बिहारी दास जी से प्राप्त हुआ।

उसी समय सागर विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग के आचार्य डॉ. अजय शंकर मिश्रा ने वहाँ आकर श्री शङ्कराचार्य का दर्शन कर कचहरी स्थित कल्पवृक्ष के संदर्भ में चर्चा की और वहाँ चलने के लिए प्रार्थना की। श्री शङ्कराचार्य जी के दर्शनार्थ प्रशासन ने विशेष सुरक्षा-व्यवस्था की। विशाल जन-सैलाव के साथ शङ्कराचार्य जी ने वहाँ पहुँचकर कल्पवृक्ष का विहंगावलोकन किया। तदनन्तर उन्होंने कहा कि इनके दर्शन से मेरा कल्याण हो गया और मेरे दर्शन से इनका कल्याण हो गया। ऐसा कहकर उन्होंने कल्पवृक्ष की सात परिक्रमा की और वहाँ उपस्थित सभी से कहा कि यह महान् पूजनीय कल्पवृक्ष सागर का गौरव है। यहाँ की भूमि के पुण्यों का फल है। उनका यह वक्तव्य डॉ. अजय शंकर मिश्रा के टेप में रिकार्ड है।

उस समय उपस्थित जिलाधीश महोदय स्मिता गाटे ने पत्रकार-समूह से इस सूचना को प्रकाशित करने के लिए कहा। दूसरे दिन जब यह सन्देश समाचारपत्रों में प्रकाशित हुआ, तब सागर शहर के लोगों को यह जानकारी प्राप्त हुई। यह कल्पवृक्ष ३ मार्च १९९७ को ही प्रकाश में आया। उसी दिन श्री शङ्कराचार्य जी टीकमगढ़ प्रवास पर निकल गये थे। तत्पश्चात् वहाँ एकत्रित लोगों ने विचार-विमर्श किया और कल्पवृक्ष के यहाँ मंदिर निर्माण करने का संकल्प लिया गया। लेकिन प्रशासन की अनुमति न मिलने से आज भी मंदिर नहीं बन पाया है। सम्प्रति कल्पवृक्ष के चारों ओर चबूतरा बना हुआ है। मध्य में छोटी-छोटी मूर्तियाँ रखी हुई हैं। लोग इसी रूप में यहाँ आकर पूजा अर्चना करते हैं और मनोवांछित फल प्राप्त करते हैं।

यह वृक्ष लगभग ५० फीट ऊँचा और १५फीट चौड़ा है। १०×१० वर्ग फीट में चबूतरा है। इसकी आकार परिधि लगभग ५० वर्ग मीटर है। इसके सामने अश्वत्थ वृक्ष है, पीपल और कल्पवृक्ष की डालियाँ पूर्वोत्तर दिशा में एक दूसरे को स्पर्श करती हैं, जो अपने मैत्रीभाव से हमें मित्रता का संदेश देती हैं। बांयीं ओर सेमर, पश्चिम में आस्ट्रेलियन बबूल आदि अनेक वृक्ष हैं। उत्तरपश्चिम में स्थित तीर्थ क्षेत्र श्री पहलवान बब्बा जी परिसर की ओर कल्पवृक्ष की झुकती डालियाँ मानों हमें देव पूजा, देवदर्शन नम्रता और बड़प्पन का संदेश देती हैं कि बड़े होने के बाद भी हमें नम्र होना चाहिए। पूर्वोत्तर भाग में हिन्दू, मुस्लिम एकता की मिशाल बनी पीली कोठी को देखता हुआ सा यह वृक्ष हमें मानवता और एकता का संदेश देता है।

सागर का दूसरा कल्पवृक्ष- डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर परिसर में वनस्पति विभाग के उपाचार्य डॉ. अजयशंकर मिश्रा के बगीचे में लहराता कल्पवृक्ष[१८]-

यह कल्पवृक्ष पाँच वर्ष पुराना है एक वर्ष की उम्र में उसमें एक पत्ती आई थी जो पुराणानुसार अद्वैत ब्रह्म की प्रतीक है। तीसरे वर्ष में तीन पत्तियाँ आईं, जो सृष्टि के तीन देव ब्रह्मा, विष्णु और महेश की प्रतीक मानी गईं हैं। पंचम वर्ष में

१७ यह चित्र श्री देव वृन्दावन बाग मठ सागर के महन्त श्री श्री १०८ महन्त श्री श्याम बिहारी दास जी से प्राप्त हुआ।

१८ यह चित्र डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर के वनस्पति विभाग के उपाचार्य डॉ. अजयशंकर मिश्रा से प्राप्त हुआ।

पांच पत्तियाँ आईं, जो वैदिक पंच देवों की प्रतीक हैं। इस प्रकार से यह कल्पवृक्ष ब्रह्म वृक्ष ही है, जिससे सृष्टि और विकास होता है। श्री मिश्र जी के बाग में स्थित यह वृक्ष इसी तरह से तैयार हुआ है, जो साक्षात् ब्रह्म स्वरूप है इसका प्रायोगिक रूप हम चित्र में देख रहे हैं।

कल्पवृक्ष-संरचना वैज्ञानिकता-

वनस्पति विज्ञान के अनुसार कल्पवृक्ष की संरचना निम्नानुसार मानी गयी है-

नाम-कपास कुल में उत्पन्न होने के कारण इसका नाम कल्पवृक्ष पड़ा।

आयु-कल्पवृक्ष की आयु ५००० वर्ष होती है। इसकी आयु का अनुमान वृक्ष के नीचे भाग को काटकर किया जाता है। इस वृक्ष में प्रत्येक वर्ष में एक बलय बनता है और अधिकतम वलय पाँच हजार पाये जाते हैं ऐसा प्रो. एडेन्सन (अमेरिका) का मानना है।

पत्ते-इसके पत्ते खुरखुरे होते हैं, इसी आधार पर इसका नाम 'खरपत्रम्' पड़ा है। पाँच-पाँच पत्ते होते हैं। प्रत्येक पत्ते में पाँच-पाँच फलक होते हैं, जिन्हें दल और निदल (सेपल-पेटल) कहते हैं। यह पाँच पत्तों के पाँच दल सनातन धर्म में पूजनीय पाँच प्रमुख देवताओं की पूजा को इंगित करते हैं और अपने में पंचदेवों के निवास की प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं।

फूल-कल्पवृक्ष का फूल बहुत ही मनमोहक आकर्षक सुनहरे रंग का बड़ा होता है, जो कदम्ब के फूल से लगभग मिलता-जुलता है। यह फूल भी अपने आप देवत्व की सिद्धि करता है। पीला, फूल भगवान् नारायण-सहित सभी देवताओं का प्रिय होता है। सभी देवताओं की पूजा-पाठ में हमेशा प्रयोग किया जाता है।

पंखुड़ियाँ-इसकी पंखुड़ियों का नियोजन एग्ज्वाइस की तरह होता है। फूल जब भी गिरता है, तो घूम-घूमकर चकरी की तरह उल्टा गिरता है। जैसे सृष्टि के आदि में भगवान् ब्रह्मा जी ने एक कमल का फूल मृत्युलोक पर फेंका था वह जिस स्थान पर गिरा था वहाँ आज पुष्कर तीर्थ है, जो भारतभूमि पर एकमात्र तीर्थ है और सम्पूर्ण मानवजाति का उद्धार कर रहा है। उसी प्रकार कल्पवृक्ष के फूल भी मानों अपने क्रियाकलाप से लोगों के उद्धार को तत्पर रहते हैं।

फल-इसका फल हल्का पीले रंग का होता है। यह ८-१० इंच लंबा तथा ४ इंच चौड़ा होता है। फल भी देवों की प्रियता को सिद्ध करता है। पीले रंग का फल और फूल मीठा होता है, जो देवताओं को अधिक प्रिय होता है।

बीज-बीज भी पीला रहता है, जो सूखने पर भी पीला बना रहता है। वह खाने में खट्टा-मीठा रहता है। इमली की तरह चूस-चूसकर खाने में बहुत ही स्वादिष्ट लगता है। इस कारण से कल्पवृक्ष का नाम गोरख इमली (Gorakh chinch)[११] भी जाना जाता है। मध्यप्रदेश के मालवा में इसी नाम से प्रचलित है।

आकृति-यह विशालकाय वृक्ष है। बरगद और पीपल की तरह बहुत बड़े क्षेत्र में फैलता है। यह नीचे से अत्यंत मोटा, बीच में छिछरा-सा रहता है। डालियाँ ऊपर की ओर लंबी उठी रहती हैं।

डालियाँ-इस वृक्ष की महत्त्वपूर्ण पहचान है डालियों का ऊपर उठा रहना। वृक्ष छोटा-सा हो या बड़ा, सदैव डालियाँ ऊपर की ओर उठी रहती हैं। शाखायें ऊर्ध्वमुख रहती हैं। फलने के बाद भी यही नीचे की ओर नहीं झुकती हैं। श्रीमद् भगवद्गीता में भगवान् श्री कृष्ण वेदवृक्ष के रूप में इसका वर्णन करते हैं-

---

११ Flowering trees- M.S. Randhara] P.P. -157

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।[20]

कल्पवृक्ष का औषधीय महत्व:-

आयुर्वेद में कल्पवृक्ष का बहुत बड़ा महत्त्व है। कल्पवृक्ष के फूल, पत्ते, छाल, फल एवं जड़ों से अनेक औषधियाँ बनायी जाती हैं और असाध्य रोगों का निदान होता है। कुछ महत्त्वपूर्ण उपयोग यहाँ उद्घृत किये गये हैं–

ल्युकोरिया:–स्त्री जाति में प्राचीन समय से ल्युकोरिया का रोग होता है, जो आज भी महिलाओं के लिए समस्या बना रहता है। कल्पवृक्ष के फल का गूँदा निकालकर खाने से लिकोरिया रोग में लाभ होता है। यदि इसे नियमित रूप से सेवन किया जाये तो रोग का समूल नाश हो जाता है।

मलेरिया:–छाल को कू टकर पानी में उबालकर काढा बनाकर पीने से मलेरिया रोग में लाभ होता है।

गर्म लू:–इसके फल के गूदे का शर्वत पीने से लू नहीं लगती है।

पेट:–इसके फल का शर्बत पीने से या छाल का काढ़ा पीने से लीवर भी मजबूत होता है।

प्यास:– इस वृक्ष में ४५०० लीटर पानी रहता है। यदि आप प्यास से पीड़ित हैं, तो वृक्ष में कहीं भी छिद्रकर पानी निकालकर अपनी प्यास बुझा सकते हैं।

लकड़ी:– इसकी लकड़ी अत्यंत मजबूत होती है। छोटी छोटी डालियां भी हाथ से नहीं टूटती हैं। सूखने के बाद जलने में भी ठीक रहती हैं।

हवाशोधन:– यह पीपल और बरगद की तरह अधिक मात्रा में ऑक्सीजन देता है। चौड़ी पत्तियाँ होने से वर्षा को खींचने में भी मदद करता है।

अत: स्पष्ट है कि कल्पवृक्ष मानव–जीवन के लिए बहुत ही महत्त्वूपर्ण वृक्ष है। इसे जिस दृष्टि से हम चाहें उपयोग कर सकते हैं। धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, आयुर्वेदिक और वैज्ञानिक दृष्टि से इसका अलग–अलग महत्त्व है। औषधीय प्रयोग तो सम्पूर्ण मानवजाति के लिए लाभकारी है। वैदिक धर्मेतर लोग यदि धार्मिक महत्व स्वीकार नहीं कर सकते हैं तो औषधीय प्रयोग स्वीकार करने में करने में क्या समस्या? यह वृक्ष वर्तमान चुनौतीपूर्ण समस्याओं के निदान में भी हमारा पूर्ण सहयोग करता है। पर्यावरण सुधारने में (वायु शोधन में) यह अहम् भूमिका निभाता है। इसलिए हम सबको इसकी रक्षा करनी चाहिए और इसके संवर्धन के लिए प्रयास करने चाहिएं।

टिप्पणी–

१ कल्पवृक्ष के सन्दर्भ में बौद्धदर्शन के विद्वान् डॉ. अम्बिकादत्त शर्मा जी (दर्शन–विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर) जी से साक्षात्कार किया। उन्होंने कहा कि कल्पवृक्ष का दर्शन से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह आयुर्वेद से सम्बन्ध रखता है। शरीर का कायाकल्प करने के कारण इसका नाम कल्पवृक्ष पड़ा।

२ आधुनिक संस्कृत के उद्भट विद्वान् डॉ. हर्षदेव माधव से एकाएक मेरी भेंट उज्जैन रेल्वे स्टेशन पर हुई। कल्पवृक्ष के संदर्भ में उन्होंने कहा कि कल्पवृक्ष वस्तुत: देव–लोक का ही वृक्ष है वह ब्रह्मतुल्य है। कल्पवृक्ष का अधिकारी ही कल्पवृक्ष को पा सकता है।

संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म. प्र.) मो. ९६८५३९०८९१, ८९८२२४९७८७

२० श्रीमद्भगवद्गीता – अध्याय १५/०१

संस्थान-समाचार

दान –

श्री विजय पुरी	५१००/-	**श्री रामभज दत्त**	१०००/-
सदाशिव मन्दिर		वौगय फैवरिक,	
सिद्धयोग आश्रम, काँगड़ा (हि. प्र.)		वी.वी.एम.बी. सेवा,	
चौ. भगवान सिंह पार्वती नासा	५०००/-	जी.टी. रोड़, पानीपत।	
चेरिटेवल ट्रस्ट,		**श्रीमती निर्मला शर्मा**	१०००/-
औरचड पीटल,		गाँव शाउीथच, समरकोट,	
सोहाना रोड, गुड़गाँव		तह. रोहड़ू, शिमला (हि. प्र.)	

हवन-यज्ञ– विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से किया जाता है।

अमृतवाणी-पाठ- जनवरी 2019 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में ही परमपूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों द्वारा अमृतवाणी का पाठ भी किया गया।

भेंट-संस्थान के परम हितैषी और शुभचिन्तक **श्री कमलपुरी जी** (दून पब्लिक स्कूल, टांडा रोड़, होशियारपुर) ने बड़ी उदारता के साथ संस्थान को 19 मज़बूत पलाई वाले बैड, 20 पलाई वाले मेज तथा 20 कुर्सियां भेंट की हैं। आप इससे पहले भी समय-समय पर संस्थान की सहायता करते रहे हैं। संस्थान इसके लिए आपका धन्यवाद करता है। आप अत्यन्त परोपकारी व दानी स्वभाव के व्यक्ति हैं। आशा है आप आगे भी इसी प्रकार संस्थान की उदारता से सहायता करते रहेंगे। प्रभु से प्रार्थना है कि आप सपरिवार स्वस्थ और सानन्द रहें एवं इसी प्रकार आपके मन में परोपकार की भावना बनी रहे।

बधाई- पंजाब विश्वविद्यालय पटल (साधु आश्रम, होश्यारपुर) के पुस्तकालय विभाग से सेवानिवृत्त डिप्टी लाईब्रेरियन **डॉ. हरिमित्र शर्मा जी** को दौहित्र के जन्म (28-12-18) पर संस्थान के कर्मिष्ठों की ओर से बहुत-बहुत बधाई।

पंजाब विश्वविद्यालय पटल साधु आश्रम, होशियारपुर के कर्मिष्ठ **श्री सौरभ** (सुपुत्र श्री कुलदीप कुमार लठ्ठ) के दिनांक 25-1-19 को होशियारपुर में संपन्न हुए शुभ विवाह पर उनको संस्थान के सभी कर्मिष्ठों की ओर से बहुत-बहुत बधाई। नव-दम्पत्ति प्रसन्न व स्वस्थ रहे, यही सभी की शुभकामनाएं हैं।

पंजाब विश्वविद्यालय पटल साधु आश्रम, होशियारपुर में सुपरिटेन्डेट **श्रीमती लतेश कुमारी जी**

30-12-2018 को सेवामुक्त हो गई हैं। आपको सभी कर्मिष्ठों की ओर से बहुत-बहुत बधाई। आप अगामी जीवन में स्वस्थ, सानन्द और नीरोग रहें, यही हम सब की प्रभु से प्रार्थना है।

पंजाब विश्वविद्यालय पटल, पुस्तकालय में कार्यरत **श्री मदनमोहन प्रसाद जी** को उनकी पदोन्नति पर संस्थान के सभी कर्मिष्ठों की ओर से बहुत-बहुत बधाई।

शोक समाचार- अत्यन्त खेद का विषय है कि संस्थान की परम हितैषिणी **श्रीमती संतोष शर्मा** (धर्मपत्नी डॉ. वेदप्रकाश शर्मा) का अमेरिका में दिनांक 9-1-19 को देहान्त हो गया। आप प्रतिवर्ष संस्थान को दान भेजती रहती थीं। उनके परिवार के प्रति संस्थान के सभी कर्मिष्ठों की ओर से समवेदना है और प्रभु से प्रार्थना है कि वह उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें एवं शोकाकुल परिवार को इस दु:ख को सहने की शक्ति प्रदान करे।

अत्यन्त खेद का विषय है कि **पद्मश्री डॉ. ओ. पी. उपाध्याय जी** का अपने निवास स्थान राजस्थान में देहान्त हो गया। आपने होशियारपुर में गुरु रविदास आयुर्वेद विश्वविद्यालय में 6 वर्ष तक उपकुलपति पद को सुशोभित किया। आप नाड़ी-विज्ञान के प्रसिद्ध डाक्टर थे। आप स्वभाव से भी सरल प्रकृति के थे। आप होशियारपुर की कई संस्थाओं से जुड़े हुए थे। नगर में जब भी कोई विशेष आयोजन होता था तो आप उसमें अवश्य संमिलित होते थे। भगवान् से प्रार्थना है कि वह उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे तथा शोकाकुल परिवार को इस दु:ख को सहने की शक्ति प्रदान करे।

विविध-समाचार

योग-शिविर का आयोजन- संस्थान में सदाशिव मन्दिर, सिद्ध योग आश्रम, कांगड़ा (हि.प्र.) की ओर से 6-01-19 रविवार को योग शिविर का आयोजन किया गया। इसमें नगर के गणमाण्य व्यक्तियों एवं संस्थान के कर्मिष्ठों ने भाग लिया और लाभ प्राप्त किया।

डॉ. पूनम सूरी राजकीय अतिथि घोषित-डॉ. पूनम सूरी जी के सम्मान में झारखंड राज्य प्रशासन द्वारा उन्हें राजकीय अतिथि घोषित किया गया तथा राज्य के द्वारा दी जाने वाली सभी सुविधाएं प्रदान की गईं। इस विशेष सम्मान के लिए संस्थान की ओर से डॉ. पूनम सूरी को बहुत-बहुत वधाई।

वेद से भी कीजिए 10वीं और बारहवीं की पढ़ाई- भारतीय वैदिक ज्ञान परंपरा को लोकप्रिय बनाने को लेकर सरकार ने एक बड़ी पहल की है। इसके तहत कोई भी छात्र अब कला, विज्ञान और वाणिज्य संकाय (स्ट्रीम) की तरह 'वेद' संकाय में भी दसवीं और बारहवीं पढ़ाई कर सकेगा।

आचारो भूतिजननः आचारः कीर्तिवर्धनः।
आचाराद् वर्धते ह्यायुः आचारो हन्त्यलक्षणम्।।

महा ६, अनु. १०५, १५४

जीवन में अच्छा आचरण ही कल्याणप्रद होता है। माता, पिता, गुरुजनों की सुश्रूषा जैसा पवित्र कार्य ही लोक में यश तथा मान बढाता है। अच्छे आचरण से व्यक्ति का आदर बढता है तथा उसके अशुभ कर्मों का विनाश भी उसी से हो जाता है।

स्वर्गीय पिता श्री बी. डी. मनोचा

एवं

स्वर्गीया माता श्रीमती राजरानी जी

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक :

लै. कर्नल वी. बी. मनोचा

सी-79, साऊथ एक्स्टैन्शन पार्ट-II

नई दिल्ली

दशाचार्यनुपाध्यायः उपाध्यायात् पिता दश।
दश चैव पितृन् माता सर्वां वा पृथिवीमपि।।

महा. ६, अनु. १०५

यदि सांसारिक वस्तुओं से माता-पिता की तुलना की जाय तो, गौरव में दश आचार्यों के बराबर उपाध्याय दश उपाध्यायों से बढ़कर पिता तथा उनसे भी बढ़कर माता का स्थान उच्च माना गया है। यहां तक कहा गया-की माता गुरुत्व में पृथ्वी से भी भारी है। अतः माता-पिता की सेवा उनका स्मरण सर्वदा कल्याणकारी होता है।

पूज्या माता

स्वर्गीया श्रीमती कैलाशवन्ती जी

(17. 7. 1929 – 14. 6. 2010)

की

पावन-स्मृति

में सादर समर्पित

प्रयोजक :

डॉ. शिवकुमार वर्मा

डिप्टी लाईब्रेरियन, वी. वी. बी. आई. एस. एण्ड आई. एस. (पं. वि.)

साधु आश्रम, होश्यारपुर।

क्षमावन्तश्च धीराश्च धर्मकार्येषु चोत्थिताः।
मङ्गलाचारसम्पन्नाः पुरुषाः स्वर्गगामिनः।।
महा. ६, अनु. २३, ८८

अपने जीवन में जो व्यक्ति क्षमावान्, धैर्यशाली तथा सर्वदा धर्म का पालन करते है तथा यथाशक्ति जीवन में माङ्गलिक कार्यों में दान देते रहे हैं या देते हैं वे निश्चय ही स्वर्ग प्राप्त करते हैं।

❋

अपने पूज्य पति

स्व. डा. हरिवंश शर्मा जी

के जन्मदिन पर

सादर समर्पित

प्रयोजिका :

श्रीमती चञ्चल कुमारी

डॉ. हरिवंश चञ्चल शर्मा धर्मार्थन्यास

1927, सैक्टर 22-बी, चण्डीगढ़

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम्।
शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थ्यो धर्म उतमः।।

महा. ६, अनु. १४२

गृहस्थियों के लिए सर्वोत्तम दान बताते हुए कहा गया कि- मन, वाणी तथा क्रिया से किसी का भी अनिष्ट न सोचना और न करना, सच्च बोलना, प्राणीमात्र पर सभी प्रकार से दया करना, सभी को समान समझना तथा यथाशक्ति दूसरों की भलाई के लिए कुछ न कुछ देते रहना गृहस्थियों का सर्वप्रथम धर्म माना गया है।

स्व. श्री योगेन्द्रपाल जी खन्ना

(जिनका निधन 13-10-1973 को हुआ)

स्व. श्रीमती शीला रानी खन्ना

(जिनका निधन 17-05-2014 को हुआ)

स्व. श्री दिनेश खन्ना

(जिनका निधन 20-06-2014 को हुआ)

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजकः

श्री चन्द्रमोहन खन्ना एवं समस्त परिवार

एम. के. कम्प्यूटर्ज, 207 भेरा इनक्लेव, पश्चिम विहार,

नई दिल्ली-110087

द्वयक्षरस्तु भवेन्मृत्युः त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम्।
ममेति च भवेन्मृत्युः न ममेति च शाश्वतम्।।

महाभा.६, अश्व. प. १३.३

भगवान् कृष्ण युधिष्ठिर से कहते हैं कि– मृत्यु तथा अमरत्व में इतना ही अन्तर है कि– मम् अर्थात् यह मेरा है, यह तेरा है, बस ये दो अक्षर ही मृत्युरूप हैं। तथा न मेरा– ये तीन अक्षर अर्थात् इससे उत्पन्न होने वाला ज्ञान कि यह मेरा नहीं (सभी का है) ये तीन अक्षर ही अमरत्व रूप हैं। तात्पर्य है कि सांसारिक वस्तुओं के प्रति ममता (लगाव) मनुष्य को जन्म-मरण के बन्धन में बांधती है तथा बिना लगाव के सांसारिक वस्तु का उपयोग करना मोक्ष का कारण है।

पूजा करते हैं मेरी चार ही तरह के आदमी।
तालिबे हक, वाकफ़े हक, गरज़दा और लालची॥

HARI RAM KAKAR

SUBHASH CHANDRA KAKAR

SURESH CHANDRA KAKAR

ASHIMA KAKAR

With best compliments from :

SHILA HARI CHARITABLE TRUST

TRUSTEES : Hari Ram Kakar, Subhash Chandra Kakar
Suresh Chandra Kakar, Ashima Kakar

House No. 490,
Sector 14,
Faridabad–121 007 (Haryana)

श्रूयतां चापरं गुह्यं रहस्यं धर्मसंहितम्।
श्रद्धधानेन कर्तव्यं वचनं सदा।।

महा. ६, अनु प. १२९ ५

महाभारत में महर्षि लोमश द्वारा धर्म का रहस्य बताते हुए कहा गया है कि- मैं धर्म की गोपनीय रहस्यमयी बात कह रहा हूँ, उसको ध्यानपूर्वक सुनो- जो व्यक्ति इस लोक तथा परलोक में अपना कल्याण चाहता है उसको अपने पूज्य वृद्धजन माता-पिता की आज्ञा का सर्वदा सहर्ष, बड़े आदर के साथ पालन करना चाहिए।

❉

पूज्य पिता

स्व. पंडित पद्मदेव जी

(भूतपूर्व वनमन्त्री, हिमाचल प्रदेश)

जो इस संस्थान के परम हितैषी व पुराने सदस्य थे, जिनका

दु:खद निधन दिनांक 6. 2. 1983 को हुआ

की

पुण्यस्मृति

में

प्रयोजक

श्रीमती निर्मलादेवी शर्मा (पुत्री)

गाँव शाडीथाच, डाकघर समरकोट, जिला शिमला (हि. प्र.)

की ओर से

नाग्निं मुखेनोपधमेत् न पादौ प्रदापयेत्।
नाधः कुर्यात् कदाचित् तु न पृष्ठंपरितापयेत्।।

महा. ६.९२ (वैधर्म पृ. ६३५५)

युधिष्ठिर के पूछने पर भगवान् श्रीकृष्ण उत्तर देते हुए कहते हैं कि- परलोक में अपना कल्याण चाहने वाले व्यक्ति (स्त्री-पुरुष) को चाहिए कि वह कभी भी मुँह से फूंककर आग को प्रज्वलित न करे (विशेषकर यज्ञ की अग्नि को) आग सेंकने के लिए पैरों को आग पर न लगादे, अर्थात् आग की ओर न करे या अंगारों को पैरों से न कुचले, तथा पीठ की ओर से आग का सेवन कर करे अर्थात् पीठ को आग की ओर करके न तपावे।

❊

With best compliments from:

Prof. Prem Kumar Chawdhary

B-30, Kailash Colony,

New Delhi-110048

एवं सत्सु सदा पश्येत् तत्राप्येषा ध्रुवा स्थितिः।
आचारो धर्ममाचष्टे यस्मिन् शान्ता व्यवस्थिताः।।

महा.६ अनुगीता पर्व १८, १९

संसार में जो सत्पुरुष हैं उनमें स्वभावत: दान, व्रत, ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय-निग्रह, शान्ति, प्राणिमात्र पर दया, चित्त संयम, सौहार्द आदि भाव पाए जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों में धर्म अटलरूप से रहता है। सदाचार ही धर्म की पहचान है और शान्तचित्त महात्मा सदाचार में ही स्थित रहते हैं।

With best compliments from:

Smt. Lalika Sharma (W/o. Ajay Sharma)

9545, Neskit Lakesdr

Alpharetta, GA 30022

USA

विश्वज्योति के लेखकों के लिए
विशेष सूचना

विश्वज्योति सम्पादक मण्डल के निर्णयानुसार विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान की हिन्दी मासिक पत्रिका विश्वज्योति के विशेषाङ्क २०१९ (अप्रैल-मई) तथा (जून-जुलाई) के लिए-

श्री गुरु नानक देव जी का ५५०वां प्रकाशपर्व

प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है। विश्वज्योति के पाठकों एवं लेखकों से निम्रतापूर्वक निवेदन है कि आप इस विषय को आधार बनाकर २८ फरवरी २०१९ तक अपने लेख विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान कार्यालय को भेज दें।

१. मान्यवर लेखकों से निवेदन है कि लेख अधिक से अधिक ५/६ पृष्ठ का होना चाहिए।

२. लेख किसी भी प्रकार से सिक्ख धर्म की मान्यता एवं परम्परा के विपरीत न हो।

३. लेख की भाषा तथा भाव आक्षेप रहित हो।

४. पहले कहीं छपा न हो।

५. इस विषय से सम्बधित लेख चाहे पंजाबी में हो संस्कृत में हो या हिन्दी में हो या अन्य किसी भाषा में ही हो; पर वह श्री गुरु नानक देव जी के जीवन से सम्बधित ही हो।

६. लेख गुरु नानक देव जी से सम्बन्धित किसी भी विषय को आधार बनाकर भेज सकते हैं, इस दिशा में आप स्वयं विज्ञ हैं। इसीलिए संकेतरूप में विषय का प्रतिपादन करना अपेक्षित नहीं समझा जा रहा है।

संचालक/सम्पादक
वी.वी.आर.आई.

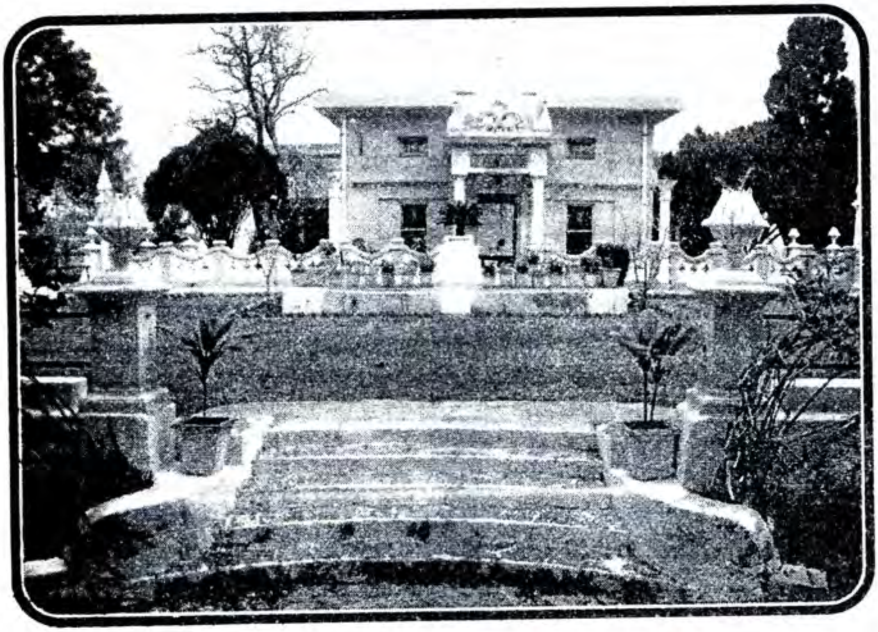

(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-०१-२०१९ को प्रकाशित।